।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

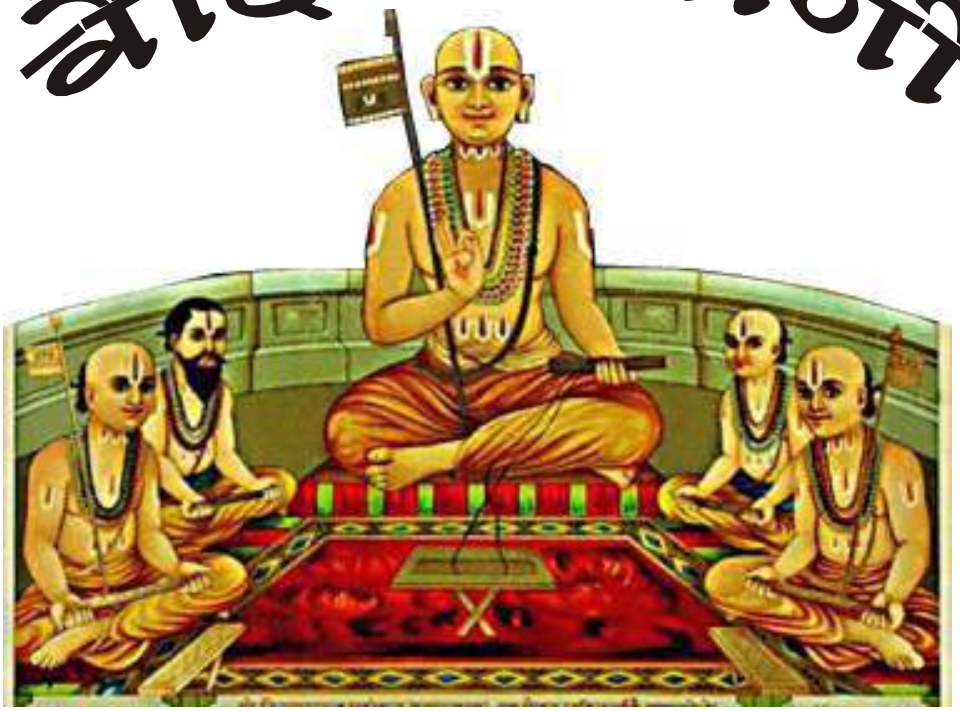

वर्ष- २७ मई- २०१५	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अङ्क- ३ रामानुजाब्द ९९६ त्रैमासिक प्रकाशन

अपराध सहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे ।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ।।

हे प्रभो! मैं हजारों अपराधों का कर्त्ता हूँ, भीषण भवसमुद्र में पड़ा हुआ हूँ। अत एव मेरी अन्य कोई गति भी नहीं है। मैं आपका चरणाश्रित हूँ, कृपा करके मुझे स्वीकार कर लीजिये ।।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

****

क्रम सं०	विषय	पृ०सं०
१.	वैदिक-वाणी—भक्त का सदा स्मरण करते हैं भगवान्	३
२.	सर्वशक्तिमान् भगवान् की उपासना करें	४
३.	'मा निषाद०' को माङ्गलिक श्लोक माना है पूर्वाचार्यों ने	५
४.	कड़ी परीक्षा में सफल हुए युधिष्ठिर	७
५.	जनमेजय ने किया सर्प यज्ञ	१०
६.	श्रीमद्भागवत कथा ब्रह्म एवं भक्ति	११
७.	काष्ठ विग्रह भगवान्	१५
८.	दारू ब्रह्म जगन्नाथ की जय	१७
९.	प्रभु जगन्नाथ का नवकलेवर	१९
१०.	भगवान् जगन्नाथ	२०
११.	भगवान् जगन्नाथ एवं उनकी अद्भुत रथयात्रा	२२
१२.	अब चलें पुरी की ओर	२४
१३.	विष्णुसहस्रनाम के (१०१-१२०) नामों का विशद् भाष्य (हिन्दी में)	२६
१३.	कालसर्पयोग के ताण्डव की सत्यता	२९
१४.	भाष्यकार रामानुजाचार्य जी का जीवन-वृत्त एवं उनका दार्शनिक विचार	३३
१५.	गया यज्ञ का आँखों देखा हाल	३९
१६.	प्रसाद की महिमा २८; किस दिशा में विवाह सम्भव है ३२; समय शुद्धि ३८	

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ४० रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र है।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

भक्त का सदा स्मरण करते हैं भगवान्

जड़ चेतनमय जगत् का सृजन पालन आदि कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। ये सब भगवान् की विभूति हैं। कल्याणमय अनन्त गुणों की निधि भगवान् हैं। भगवान् में अनन्त कल्याण गुणों का सम्बन्ध ही योग है। विभूति और योग इन दोनों को जो जानता है उसे भगवान् की अविरल भक्ति प्राप्त होती है। अर्थात् भगवान् की विभूतियाँ और अनन्त कल्याण गुणों का ज्ञान भक्ति को बढ़ाने वाला है।

जिस समय भक्त के हृदय में भगवत्प्रेम का प्रवाह उमड़ता है उसी समय भक्त का मन प्रभु में संलग्न हो जाता है। जैसे जल से प्रेम रखने वाली मछलियों का जीवन जल के अधीन होता है, उसी प्रकार भगवत्प्रेम में निमग्न रहने वाले भक्त का जीवन भगवदधीन होता है। वे भगवान् को छोड़कर दूसरे की चर्चा कभी भी नहीं करना चाहते। वे सदा भगवान् के दिव्य गुणों का स्मरण करने एवम् उनके स्वरूप, गुण तथा विभूति का वर्णन करने में सन्तुष्ट रहते हैं। इस तरह भगवत्प्रेमी भक्त सदा आनन्द का अनुभव करते रहते हैं।

इस प्रसङ्ग में अम्बरीष का चरित्र स्मरणीय है। अम्बरीष बड़े भाग्यवान् थे। वे जानते थे कि जिस धन-वैभव के लोभ में पड़कर मनुष्य घोर नरक में जाता है, वह केवल चार दिन की चाँदनी है। भगवान् श्रीकृष्ण में और उनके प्रेमी साधुओं में प्रेम रखना ही जीवन का सार है।

श्रीकृष्ण के चरणों का प्रेम प्राप्त हो जाने पर सारा विश्व और उसकी सारी सम्पत्तियाँ मिट्टी के ढेले के समान जान पड़ती है। इसलिए अम्बरीष ने अपने मन को श्रीकृष्ण के युगल चरणों में, वाणी को उनके गुणों के वर्णन में, हाथों को श्रीहरि मन्दिर के मार्जन एवं सिञ्चन में और अपने कानों को भगवान् की मङ्गलमयी कथा के श्रवण में और अपने नेत्रों को भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य मङ्गलमय विग्रह एवम् उनके मन्दिरों के दर्शन में लगा दिया था। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के दशवें अध्याय में कहा है—

मच्चिता मद्गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

भगवान् के इस दिव्योपदेश को अम्बरीष ने पूर्णरूपेण अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया था। अम्बरीष एक राजा थे, उनका राज्य उदयाचल से स्ताचल तक था। वे अपने राज्य की ओर से पूर्ण उदासीन रहते थे। भगवान् ने उनके राज्य में शान्ति बनाये रखने के लिए दिव्य आयुध श्रीसुदर्शन-चक्र को नियुक्त कर दिया था। श्री अम्बरीष जी सभी एकादशी व्रत करते थे और कोई भी अतिथि उनके राजमहल में आ जाता था तो उसे भोजन कराने के बाद ही स्वयं भोजन करते थे। श्री अम्बरीष जी की प्रेममयी भावना से जगत् में सर्वत्र उनकी प्रशंसा होती थी। दुर्वासा तपस्वी एवं विद्वान् सन्त थे, किन्तु उनमें ईर्ष्या विशेष रहती थी। अम्बरीष की प्रशंसा सुनकर दुर्वासा के हृदय में जलन होती थी। वे समझते थे कि श्री अम्बरीष एक गृहस्थ है। उसकी प्रशंसा सर्वत्र हो रही है। मेरे गुणों का गान कोई नहीं करता। उन्होंने अम्बरीष की परीक्षा लेने पर उतारू होकर कृत्या को प्रकट की, जो अम्बरीष को जलाने के लिए तैयार हो

गयी। तब श्रीभगवान् द्वारा अम्बरीष जी की रक्षा हेतु नियुक्त श्रीसुदर्शनचक्र जी ने कृत्या को जलाकर दुर्वासा का पीछा किया। भयभीत दुर्वासा जी तीनों लोक में प्राणरक्षा हेतु घुम गये; परन्तु उनकी रक्षा कोई नहीं कर सका। अन्त में भगवान् विष्णु के शरण में गये। भगवान् विष्णु ने कहा कि दुर्वासा जी ब्राह्मणों के लिए विद्या और तपस्या ये दोनों कल्याण करने वाली है; परन्तु जो तपस्वी और विद्वान् उदण्ड हो जाते हैं उन्हें विपरीत फल होता है—

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पे ते कर्तुरन्यथा।।

इसलिए भगवान् ने दुर्वासा से कहा कि मैं भक्त के पराधीन हूँ। सच्चे सन्त मेरे हृदय को खीच लेते हैं। साधु मेरे हृदय हैं मैं साधु का हृदय हूँ। जो सन्त मुझे छोड़कर दूसरे को नहीं जानते हैं मैं भी उन्हें छोड़कर दूसरे को नहीं जानता हूँ। श्री अम्बरीष ऐसे ही सन्त हैं जो सदा मुझे ही स्मरण करते रहते हैं, मैं भी उन्हें कभी नहीं भूलता हूँ।

माधवो हृदयं मह्यं साधुनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि।।

भगवान् विष्णु ने दुर्वासा से कहा कि तुम मेरे अन्तरङ्ग भक्त अम्बरीष से विरोध करके आये हो तुम दुर्विनीत हो इसलिए तुम्हें मैं क्षमा नहीं कर सकता हूँ। मेरे सच्चे भक्त के प्रति जो अपराध करता है उसे मैं क्षमा नहीं करता, अतः उन्होंने दुर्वासा को अम्बरीष के पास भेज दिया। श्री अम्बरीष जी ने प्रथम तो प्रार्थना करके सुदर्शनचक्र के तेज को शान्त कराया। तदनन्तर उन्होंने क्षमा कर दुर्वासा को सम्मान दिया। इसी भाव से तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस में लिखा है—

जो अपराध भगत कर करई।
राम रोष पावक महँ जरई।।
लोकहूँ वेद विदीत इतिहासा।
यह महिमा जानही दुर्वासा।।

सर्वशक्तिमान् भगवान् की उपासना करें

विषयी पुरुष अपनी पूर्व वासना से नियन्त्रित रहते हैं। जिससे उनकी स्त्री, पुत्र, धन आदि अनेक सांसारिक फलों की ही चाह होती है। वे समझते हैं कि संसार के फलों को शीघ्र देने वाले इन्द्रादि देवगण हैं। भगवान् तो विलम्ब से फल देते हैं। अत एव वे भगवत्स्वरूप के ज्ञान से वञ्चित हो जाते हैं और अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए अन्य देवों के पास जाते हैं। जिस-जिस देवता के पूजन का जो-जो नियम है, उन-उन नियमों के अनुसार उन-उन देवों का पूजन करते हैं। इस तरह पूर्व वासना के अनुसार विषयी पुरुषों की प्रीति अन्य देवों में ही होती है।

यद्यपि भगवान् अन्तर्यामी रूप से सभी देवताओं के अन्दर वास करते हैं। इसलिए सब देवता उनके शरीर हैं; परन्तु लौकिक फल की प्राप्ति के लिए जो लोग इन्द्रादि देवों की उपासना करते हैं वे लोग भगवान् के शरीर के रूप में उन देवों को नहीं समझते हैं। फिर भी भगवान् उन देवोपासकों को उन्हीं देवों में अचल श्रद्धा उत्पन्न कर देते हैं।

समस्त देवता भगवान् के शरीर हैं। सभी उनके अधीन रहने वाले हैं। भगवान् ने ही उन इन्द्रादि देवों को पुण्य-कर्म के अनुसार देवपदों पर बैठाया है। किस देवता के द्वारा कौन फल मिल सकता है, यह भगवान् के द्वारा ही निश्चित किया गया है। जिस देवता में जैसा देने की सामर्थ्य भगवान् से प्राप्त है, वह देवता वैसा ही फल उपासक को दे सकता है। प्रथम पूर्व वासना के अनुसार ही अन्य देवोपासना में प्रवृत्ति होती है।

बाद में भगवान् प्रवृत्ति के अनुरूप श्रद्धा बढ़ा देते हैं। इसलिए ईश्वर प्रवर्द्धित श्रद्धा से युक्त होकर मानव लौकिक फल के लिए देवों की उपासना करता है। वे देवता ईश्वर प्रदत्त सामर्थ्य के अनुसार उपासकों को फल देते हैं।

अन्य देवों से धन, पुत्र आदि लौकिक तथा स्वर्गीय नश्वर फल ही प्राप्त होते हैं। उनमें अनन्त और अक्षय फल देने की सामर्थ्य नहीं है। इन्द्रादि देवता अधिक से अधिक अपना लोक दे सकते हैं। जैसे पृथ्वी के एक क्षुद्रभाग पर राज्य करने वाला राजा समस्त भू-मण्डल का राज्य नहीं दे सकता है। समस्त भूमण्डल का राज्य वही दे सकता है जिसे उस पर अधिकार है। उसी प्रकार देवताओं का वैकुण्ठ पर जब अधिकार ही नहीं है, तब वे सब वैकुण्ठ दे कैसे सकते हैं? देवों को तो अभी तक वैकुण्ठ का सुख मिला ही नहीं है। देवगण परिमित भोग वाले एवं सीमित काल तक रहने वाले हैं। इसलिए इन्द्रादि देवों के लोक में गये हुये पुरुष भी थोड़ा और नश्वर फल प्राप्त करते हैं। इसलिए शास्त्रों में कहा गया है कि 'भगवान् वासुदेव को छोड़कर अन्य देव की उपासना करने वाला व्यक्ति वैसा ही है जैसा गङ्गा के तट पर रहने वाला प्यासा मानव पाप-ताप नाशक तथा प्यास को शान्त करने वाला सुलभ गङ्गाजल को न पीकर अपनी प्यास मिटाने के लिए कूप खोदता है।

जो भगवान् का पूजन करते हैं वे भगवल्लोक वैकुण्ठ में वास करते हैं। वहाँ का सुख अविनाशी और अनन्त है। वहाँ गये हुए जीव संसार में नहीं लौटते हैं। अतः जो मानव बुद्धिमान् है, वह एकमात्र भगवान् का ही पूजन करता है। अत एव किसी अन्य देवोपासक की मृत्यु के बाद पिण्डदान के अवसर पर तर्पण करते हुए उनके उपास्य देव से मुक्ति के लिए प्रार्थना नहीं की जाती है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के ही प्रार्थना मन्त्र बोले जाते हैं—

वासुदेवं परित्यज्य योऽन्यं देवमुपासते।
तृषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मतिः।।
अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः।
अक्षय्यः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदोभव।।
कृष्ण कृष्ण कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव।
संसारार्णवमग्नानां प्रसीद पुरुषोत्तम।।
नारायण सुरश्रेष्ठ लक्ष्मीकान्त वरप्रद।
अनेन तर्पणेनाथ प्रेतमोक्ष प्रदोभव।।

'मा निषाद.' को माङ्गलिक श्लोक माना है पूर्वाचार्यों ने

वाल्मीकि जी अपने प्रिय शिष्य भारद्वाज को साथ लेकर स्नान के लिए तमसा नदी के तट पर गए। वहाँ पङ्करहित घाट एवं स्वच्छ जल को देखकर वाल्मीकि ने भारद्वाज से कहा कि मैं इस उत्तम तीर्थ में स्नान करूँगा। तुम वल्कल दे दो। वे वल्कल लेकर वन की शोभा देखने लगे।

उस वन में एक क्रौञ्च पक्षी का जोड़ा (नर और मादा दोनों) प्रेम-पूर्वक विचर रहे थे। क्रौञ्च पक्षी क्रौञ्ची में कामासक्त था। वहाँ एक निषाद (व्याध) आया, जो अकारण जीवों का वैरी था। उसने नर पक्षी क्रौञ्च को अपने बाण से मार डाला। अपने पति की हत्या हुई देखकर क्रौञ्ची करुण-क्रन्दन करने लगी। मादा पक्षी की वह दुर्दशा देखकर महात्मा वाल्मीकि को बड़ी दया उमड़ गयी। उन्होंने कहा कि यह अधर्म हुआ है। स्वाभाविक करुणा का अनुभव करने वाले महात्मा वाल्मीकि क्रौञ्ची की ओर देखते हुए अनुष्टुप-छन्दोबद्ध एक श्लोक बोले—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

हे निषाद! तुम शाश्वत प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त करोगे; क्योंकि तुमने युगल पक्षियों में से जो कामासक्त नर पक्षी था, उसका वध कर दिया है। रोती हुई क्रौञ्ची पक्षी को देखकर करुणावश मुनि के मुख से शाप निकल गया।

ब्रह्माजी ने महात्मा वाल्मीकि की मनःस्थिति को समझकर हँसते हुए मुनि से कहा कि तुम्हारे मुँह से निकला हुआ यह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोकमय होगा। यह श्लोकबद्ध तुम्हारे मुँह से निकली हुई वाणी मेरी प्रेरणा से प्रकट हुई है—

मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ।

पुनः ब्रह्मा ने वाल्मीकि से कहा कि मेरी प्रेरणा से तुम्हारे मुख से जो श्लोक निकला है, उसी छन्द में श्रीरामचरित की रचना करो—

रामस्य चरितं कृष्णकुरुत्वं ऋषिसत्तमः ।

इससे महात्मा वाल्मीकि के शिष्यों को अपार हर्ष हुआ, वे लोग कहने लगे कि मेरे गुरुदेव ने एक क्रौञ्च पक्षी के दुःख से दुःखी होकर जिस श्लोक का गान किया था, वह उनके हृदय का शोक था; परन्तु ब्रह्मा ने वरदान देकर उसे जगत् हित के लिए मङ्गलमय बना दिया है। इसीलिए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि ब्रह्मा के प्रसादस्वरूप वाल्मीकि के मुखारविन्द से निकला हुआ **'मा निषाद०'** यह श्लोक केवल शापपरक नहीं हो सकता, अपितु यह मङ्गलाचरण रूप भी है। इसके अनुसार इस श्लोक का अर्थ करना चाहिये। निषीदन्त्यस्मिन्निति निषाद। निषाद का अर्थ है–निवास। मा का अर्थ है–लक्ष्मी; क्योंकि अमरकोष में—**इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा ।** इस श्लोक के द्वारा लक्ष्मी के नाम बतलाये गये हैं। इनमें मा शब्द लक्ष्मी के लिए आया है।

अतः मा = लक्ष्मीः, तस्मात् निषादो मानिषादः श्रीनिवासः सम्बोधन में मानिषाद का अर्थ है—हे श्रीनिवास, त्वम् = तुम, शाश्वती समाः = सब काल में, प्रतिष्ठाम् = प्रतिष्ठा, अगमः = प्राप्त करोगे। यत् क्रौञ्चमिथुनात् = राक्षसमिथुनाद्रावणमन्दोदरीरूपात् = रावण-मन्दोदरी रूप पक्षियों में, काममोहितम् = काममोहित होकर, सीता का अपहरण करने वाले रावण का, अवधी = वध किया है। रावण-वध करने से तीनों लोकों की रक्षा हुई है। अतः तुम जब तक सृष्टि रहेगी, तब तक विजयी रहोगे। यह अपने इष्ट देवता भगवान् श्रीराम का स्मरणरूप मङ्गलाचरण है।

मङ्गलाचरण रूप होने से इस श्लोक में सम्पूर्ण रामायण महाकाव्य का भाव सङ्क्षेप से प्रदर्शित किया गया है। 'मा निषाद०' का अर्थ हुआ–श्रीनिवास। अर्थात् श्रीनिवास शब्द सीता पति श्रीराम का बोधक है। श्रीराम से सीता के सम्बन्ध का वर्णन हुआ है–बालकाण्ड में। अतः 'मा निषाद०' से सीता-विवाहपर्यन्त बालकाण्ड का बोध हो रहा है।

प्रतिष्ठां त्वमगमः = श्रीराम पिता के वचन का पालन करने के लिए अयोध्या से वन में गये। उससे श्रीराम को जगत् में महान् प्रतिष्ठा मिली। अतः 'प्रतिष्ठां त्वमगमः' वाक्य अयोध्याकाण्ड का बोधक है।

शाश्वतीसमाः = वन में श्रीराम को ऋषियों से शाश्वती प्रतिष्ठा मिली है। इसलिए इससे अरण्यकाण्ड की कथा सूचित होती है।

यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम् = क्रौञ्च शब्द क्रुञ्च धातु से गति कौटिल्य और अल्पीय भाव अर्थ में बनता है। अतः कौटिल्य अर्थ के कारण क्रौञ्च शब्द से किष्किन्धाकाण्ड की कथा सूचित होती है; क्योंकि कुटिल पक्षी तारा और बालि–इन दोनों में

एक काममोहित सुग्रीव की भार्या का अपहरण करने वाले बालि का श्रीराम ने वध किया है।

'क्रौञ्च' शब्द अल्पीभाव अर्थ में भी बनता है। सीताजी श्रीराम के विरह में अत्यन्त कृश हो गयी हैं। जिसका वर्णन सुन्दरकाण्ड में किया गया है। अत: क्रौञ्च शब्द से सुन्दरकाण्ड की कथा सूचित होती है। सुन्दरकाण्ड के अनुसार लङ्का में सीताजी को अत्यन्त दु:ख दिया गया जो एक प्रकार से वध ही है।

क्रौञ्च पक्षी के जोड़ों में से श्रीराम ने रावण और मन्दोदरी में से काममोहित रावण का वध किया है। इससे लङ्काकाण्ड की कथा सूचित होती है।

मोहितम् = दण्डकारण्यवासी ऋषियों की पत्नियों के दर्शन की अभिलाषा से मोहित होने के कारण सीता को पुन: वन में जाना पड़ा। वहाँ सीता को विशेष पीड़ा हुई, जिसका वर्णन उत्तरकाण्ड में किया गया है। अत: इससे उत्तरकाण्ड की कथा सूचित हो रही है।

इस तरह सम्पूर्ण रामायण का भाव 'मा निषाद०' इस श्लोक से प्रकट होता है। श्रीब्रह्मा ने दिव्य दृष्टि देकर महर्षि वाल्मीकि द्वारा समस्त वेद का सारांश रामायण रूप में प्रकट करा दिया है।

●

कड़ी परीक्षा में सफल हुए युधिष्ठिर

मन को संयम में रखकर उत्तरदिशा का आश्रय लेने वाले योगयुक्त पाण्डवों ने मार्ग में महापर्वत हिमालय का दर्शन किया। उसे भी लाँघकर जब वे आगे बढ़े, तब उन्हें बालू का समुद्र दिखायी दिया। साथ ही उन्होंने पर्वतों में श्रेष्ठ महागिरि मेरु का दर्शन किया। सब पाण्डव योगधर्म में स्थित हो बड़ी शीघ्रता से चल रहे थे। उनमें से द्रुपदकुमारी कृष्णा का मन योग से विचलित हो गया, अत: वह लड़खड़ा कर नीचे गिर पड़ी। उसे नीचे गिरी देख महाबली भीमसेन ने धर्मराज से पूछा—परंतप! राजकुमारी द्रौपदी ने कभी कोई पाप नहीं किया था। फिर बताइये कौन-सा कारण है, जिससे वह नीचे गिर गयी? युधिष्ठिर ने कहा कि उसके मन में अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपात था, आज यह उसी का फल भोग रही है। ऐसा कहकर उसकी ओर देखे बिना ही भरतभूषण, नरश्रेष्ठ, बुद्धिमान् धर्मात्मा युधिष्ठिर मन को एकाग्र करके आगे बढ़ गये। थोड़ी देर बाद विद्वान् सहदेव भी धरती पर गिर पड़े। उन्हें भी गिरा देख भीमसेन ने राजा से पूछा—भैया! जो सदा हमलोगों की सेवा किया करता था और जिसमें अहङ्कार का नाम भी नहीं था, यह माद्रीनन्दन सहदेव किस दोष के कारण धराशायी हुआ है?

युधिष्ठिर ने कहा कि यह राजकुमार सहदेव किसी को अपने जैसा विद्वान् या बुद्धिमान् नहीं समझता था, अत: उसी दोष से इसका पतन हुआ है। ऐसा कहकर सहदेव को भी छोड़कर शेष भाइयों और एक कुत्ते के साथ कुन्तीकुमार युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। कृष्णा और पाण्डव सहदेव को गिरे हुए देख शोक से आर्त हो बन्धुप्रेमी शूरवीर नकुल भी गिर पड़े। मनोहर दिखाई देने वाले वीर नकुल के धराशायी होने पर भीमसेन ने पुन: राजा युधिष्ठिर से यह प्रश्न किया—

भैया! संसार में जिसके रूप की समानता करने वाला कोई नहीं था तो भी जिसने कभी अपने धर्म में त्रुटि नहीं आने दी तथा जो सदा हमलोगों की आज्ञा का पालन करता था, वह हमारा प्रियबन्धु नकुल क्यों पृथ्वी पर गिरा है? युधिष्ठिर ने उत्तर

दिया कि नकुल की दृष्टि सदा ऐसी रही है कि रूप में मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। इसके मन में यही बात बैठी रहती थी कि एकमात्र मैं ही सबसे अधिक रूपवान् हूँ। इसीलिए नकुल नीचे गिरा है। तुम आओ। वीर जिसकी जैसी करनी है, वह उसका फल अवश्य भोगता है।

द्रौपदी, नकुल और सहदेव–तीनों गिर गये, यह देखकर शत्रुवीरों का संहार करने वाले श्वेतवाहन पाण्डुपुत्र अर्जुन शोक से सन्तप्त हो स्वयं भी गिर पड़े। इन्द्र के समान तेजस्वी दुर्धर्ष वीर पुरुषसिंह अर्जुन जब पृथ्वी पर गिरकर प्राण त्याग करने लगे, उस समय भीमसेन ने राजा युधिष्ठिर से पूछा—महात्मा अर्जुन कभी परिहास में भी झूठ बोले हों ऐसा मुझे याद नहीं आता। फिर यह किस कर्म का फल है, जिससे इन्हें पृथ्वी पर गिरना पड़ा?

युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन को अपनी शूरता पर अभिमान था। इन्होंने कहा था कि मैं एक ही दिन में शत्रुओं को भस्म कर डालूँगा, किन्तु ऐसा किया नहीं। इसी से आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है। अर्जुन ने सम्पूर्ण धनुर्धरों का अपमान भी किया था, अत: अपना कल्याण चाहने वाले पुरुष को ऐसा कभी नहीं करना चाहिए। ऐसा कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतने में ही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरने के साथ ही भीम ने धर्मराज युधिष्ठिर को पुकार कर पूछा—राजन्! जरा मेरी ओर तो देखिये, मैं आपका प्रिय भीमसेन यहाँ गिर पड़ा हूँ। यदि जानते हो तो बताइये मेरे इस पतन का क्या कारण है?

युधिष्ठिर ने कहा कि तुम बहुत खाते थे और दूसरों को कुछ भी न समझकर अपने बल की डींग हाँका करते थे, इसी से तुम्हें भी धराशायी होना पड़ा है। यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये। एक कुत्ता भी बराबर उनके साथ चलता रहा।

तदनन्तर आकाश और पृथ्वी को सब ओर से प्रतिध्वनित करते हुए देवराज इन्द्र रथ के साथ युधिष्ठिर के पास आ पहुँचे और उनसे बोले—कुन्तीनन्दन! तुम इस रथ पर सवार हो जाओ। अपने भाइयों को धराशायी हुआ देख धर्मराज युधिष्ठिर शोक से सन्तप्त हो इन्द्र से इस प्रकार बोले—मेरे भाई मार्ग में गिरे पड़े हैं वे भी मेरे साथ चले इसकी व्यवस्था कीजिये; क्योंकि मैं भाइयों के बिना स्वर्ग में जाना नहीं चाहता।

राजकुमारी द्रौपदी सुकुमारी है, वह सुख पाने के योग्य है। वह भी हमलोगों के साथ चले, इसकी अनुमति दीजिए। युधिष्ठिर के कहने पर इन्द्र ने कहा कि तुम्हारे सभी भाई तुमसे पहले ही स्वर्ग में पहुँच गये हैं। उनके साथ द्रौपदी भी है। वहाँ चलने पर वे सब तुम्हें मिलेंगे। वे मानव शरीर का परित्याग करके स्वर्ग में गये हैं, किन्तु तुम इसी शरीर से वहाँ चलोगे, इसमें संशय नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा कि भूत और वर्तमान के स्वामी देवराज! यह कुत्ता मेरा बड़ा भक्त है। इसने सदा ही मेरा साथ दिया है, अत: यह भी मेरे साथ चले, ऐसी आज्ञा दीजिए; क्योंकि मेरी बुद्धि में निष्ठुरता का अभाव है। पुन: इन्द्र ने कहा कि तुम्हें अमरता, मेरी समानता, पूर्ण लक्ष्मी और बहुत बड़ी सिद्धि प्राप्त हुई है, साथ ही तुम्हें स्वर्गीय सुख भी उपलब्ध हुए हैं, अत: इस कुत्ते को छोड़ो और मेरे साथ चलो। इसमें कोई कठोरता नहीं है। युधिष्ठिर ने कहा कि किसी आर्य पुरुष के द्वारा निम्न श्रेणी का काम होना अत्यन्त कठिन है। मुझे ऐसी लक्ष्मी की प्राप्ति कभी न हो जिसके लिये भक्तजन का त्याग करना पड़े।

पुन: इन्द्र ने कहा कि धर्मराज कुत्ता रखने वालों के लिये स्वर्गलोक में स्थान नहीं है। उनके

यज्ञ करने और कुआँ, बावड़ी आदि बनवाने का जो पुण्य होता है, उसे क्रोधवश नामक राक्षस हर लेते हैं, इसलिये सोच-विचार कर काम करो, छोड़ दो इस कुत्ते को। ऐसा करने में कोई निर्दयता नहीं है। युधिष्ठिर ने कहा कि भक्त का त्याग करने से जो पाप होता, उसका अन्त कभी नहीं होता–ऐसा महात्मा पुरुष कहते हैं। संसार में भक्त का त्याग ब्रह्महत्या के समान माना गया है, अत: मैं अपने सुख के लिये किसी तरह भी आज इस कुत्ते का त्याग नहीं करूँगा।

जो डरा हुआ हो, भक्त हो, मेरा दूसरा कोई सहारा नहीं है, ऐसा कहते हुए आर्तभाव से शरण में आया हुआ हो, अपनी रक्षा में असमर्थ दुर्बल हो और अपने प्राण को बचाना चाहता हो, ऐसे पुरुष को प्राण जाने पर भी मैं नहीं छोड़ सकता, यह मेरा सदा का व्रत है। इन्द्र ने कहा कि मनुष्य जो कुछ दान, यज्ञ, स्वाध्याय और हवन आदि पुण्यकर्म करता है, उस पर यदि कुत्ते की दृष्टि भी पड़ जाय तो उसके फल को क्रोधवश नामक राक्षस हर ले जाते हैं, इस कुत्ते का त्याग कर दो। कुत्ते को त्याग देने से ही तुम देवलोक में पहुँच सकोगे। वीर! तुमने अपने भाइयों तथा प्यारी पत्नी द्रौपदी का परित्याग करके अपने किये हुए पुण्यकर्मों के फलस्वरूप देवलोक को प्राप्त किया है। फिर तुम इस कुत्ते को क्यों नहीं त्याग देते? सब कुछ छोड़कर अब कुत्ते के मोह में कैसे पड़ गये?

युधिष्ठिर ने कहा कि संसार में यह निश्चित बात है कि मरे हुए मनुष्यों के साथ न तो किसी का मेल होता है, न विरोध ही। द्रौपदी तथा अपने भाईयों को जीवित करना मेरे वश की बात नहीं थी, अत: मर जाने पर मैंने उनका त्याग किया है, जीवितावस्था में नहीं। शरण में आये हुए को भय देना, स्त्री का वध करना, ब्राह्मण का धन लूटना और मित्रों के साथ द्रोह करना–ये चार अधर्म एक ओर और भक्त का त्याग दूसरी ओर हो तो मेरी समझ में यह अकेला ही उन चारों के बराबर है। धर्मराज युधिष्ठिर का यह कथन सुनकर कुत्ते का रूप धारण करके आये हुए धर्मस्वरूपी भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और राजा युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए मधुर वचनों द्वारा उनसे इस प्रकार बोले—तुम अपने सदाचार, बुद्धि तथा सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति होने वाली इस दया के कारण वास्तव में सुयोग्य पिता के उत्तम कुल में उत्पन्न हुए सिद्ध हो रहे हो।

बेटा! पूर्वकाल में द्वैतवन के भीतर रहते समय भी एक बार मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी, जबकि तुम्हारे सभी भाई पानी लाने के लिये उद्योग करते हुए मारे गये थे। उस समय तुमने कुन्ती और माद्री दोनों माताओं में समानता की इच्छा रखकर अपने सगे भाई भीम और अर्जुन को छोड़कर केवल नकुल को जीवित करना चाहा था। इस समय भी 'यह कुत्ता मेरा भक्त है' ऐसा सोचकर तुमने देवराज इन्द्र के भी रथ का परित्याग कर दिया है, अत: स्वर्गलोक में तुम्हारे समान दूसरा कोई राजा नहीं है। भरतश्रेष्ठ! यही कारण है कि तुम्हें अपने इसी शरीर से अक्षय लोकों की प्राप्ति हुई है। तुम परम उत्तम दिव्य गति को पा गये हो।

यह कहकर धर्म, इन्द्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, देवता तथा देवर्षियों ने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर को रथ पर बिठाकर अपने-अपने विमानों द्वारा स्वर्गलोक को प्रस्थान किए। वे सब-के-सब इच्छानुसार विचरने वाले, रजोगुणशून्य, पुण्यात्मा पवित्रवाणी, बुद्धि और कर्म वाले तथा सिद्ध थे। कुरुकुलतिलक राजा युधिष्ठिर उस रथ में बैठकर अपने तेज से पृथ्वी और आकाश को व्याप्त करते हुए तीव्र गति से ऊपर की ओर चले गये।

जनमेजय ने किया सर्पयज्ञ

मुनिकुमार शृङ्गी ने क्रोधित होकर परीक्षित को शाप दे दिया था। जब उनका भेजा हुआ तक्षक सर्प राजा परीक्षित को डसने के लिए उनके पास चला तब रास्ते में उसने कश्यप नाम के एक ब्राह्मण को देखा। कश्यप ब्राह्मण सर्पविष की चिकित्सा करने में बड़े निपुण थे। तक्षक ने बहुत-सा धन देकर कश्यप को वहीं से लौटा दिया, उन्हें राजा के पास नहीं जाने दिया और स्वयं ब्राह्मण के रूप में छिपकर राजा परीक्षित के पास गया और उन्हें डस लिया। राजर्षि परीक्षित तक्षक के डसने के पहले ही ब्रह्म में स्थित हो चुके थे। अब तक्षक के विष की आग से उनका शरीर सबके सामने ही जलकर भस्म हो गया।

पृथ्वी, आकाश और सब दिशाओं में बड़े जोर से हाय, हाय की ध्वनि होने लगी। देवता, असुर, मनुष्य आदि सब-के-सब परीक्षित की यह परमगति देखकर विस्मित हो गये। देवताओं की दुन्दुभियाँ अपने आप बज उठीं। गन्धर्व और अप्सराएँ गान करने लगीं। देवतालोग साधु-साधु के नारे लगाकर पुष्पों की वर्षा करने लगे।

जब जनमेजय ने सुना कि तक्षक ने मेरे पिताजी को डस लिया है तो उसे बड़ा क्रोध हुआ। अब वह ब्राह्मणों के साथ विधिपूर्वक सर्पों का अग्निकुण्ड में हवन करने लगा। तक्षक ने देखा कि जनमेजय के सर्प-सत्रकी प्रज्ज्वलित अग्नि में बड़े-बड़े महासर्प भस्म होते जा रहे हैं तब वह अत्यन्त भयभीत होकर देवराज इन्द्र की शरण में गया। बहुत सर्पों के भस्म होने पर भी तक्षक नहीं आया, यह देखकर परीक्षित नन्दन राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों से कहा—ब्राह्मणो! अब तक सर्पाधम तक्षक क्यों नहीं भस्म हो रहा है?

तक्षक इस समय इन्द्र की शरण में चला गया है और वे उसकी रक्षा कर रहे हैं। उन्होंने ही तक्षक को स्तम्भित कर दिया है, इसी से वह अग्निकुण्ड में गिरकर भस्म नहीं हो रहा है। परीक्षित नन्दन जनमेजय बड़े ही बुद्धिमान और वीर थे। उन्होंने ब्राह्मणों की बात सुनकर ऋत्विजों से कहा—ब्राह्मणो! आपलोग इन्द्र के साथ तक्षक को क्यों नहीं अग्नि में गिरा देते? जनमेजय की बात सुनकर ब्राह्मणों ने उस यज्ञ में इन्द्र के साथ तक्षक का अग्नि-कुण्ड में आवाहन किया। उन्होंने कहा—रे तक्षक! तू मरुद्गण के सहचर इन्द्र के साथ इस अग्निकुण्ड में शीघ्र आ गिर। जब ब्राह्मणों ने इस प्रकार आकर्षण मन्त्र का पाठ किया, तब तो इन्द्र अपने स्थान स्वर्ग-लोक से विचलित हो गये। विमान पर बैठे हुए इन्द्र तक्षक के साथ ही बहुत घबरा गये और उनका विमान भी चक्कर काटने लगा। अङ्गिरानन्द बृहस्पति जी ने देखा कि आकाश से देवराज इन्द्र विमान और तक्षक के साथ ही अग्नि-कुण्ड में गिर रहे हैं, तब उन्होंने राजा जनमेजय से कहा—नरेन्द्र सर्पराज तक्षक को मार डालना आपके योग्य काम नहीं है, यह अमृत पी चुका है। इसलिये यह अजर और अमर है।

जगत् के प्राणी अपने-अपने कर्म के अनुसार ही जीवन-मरण और मरणोत्तर गति प्राप्त करते हैं। कर्म के अतिरिक्त और कोई भी किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता। जनमेजय यों तो बहुत से लोगों की मृत्यु साँप, चोर, आग, विजली आदि से तथा भूख-प्यास, रोग आदि निमित्तों से होती है; परन्तु यह तो कहने की बात है। वास्तव में तो सभी प्राणी अपने प्रारब्ध कर्म का ही उपभोग करते हैं। राजन् तुमने बहुत से निरपराध सर्पों को जला दिया है। इस अभिचार-यज्ञ का फल केवल प्राणियों की हिंसा ही है। इसलिये इसे बन्द कर देना चाहिए; क्योंकि जगत् के सभी प्राणी अपने-अपने प्रारब्धकर्म का ही भोग कर रहे हैं। महर्षि बृहस्पति जी की बात का सम्मान करके जनमेजय ने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। उन्होंने सर्प सत्र बन्द कर दिया और देवगुरु बृहस्पति जी की विधिपूर्वक पूजा की।

श्रीमद्भागवत कथा, ब्रह्म एवं भक्ति

ब्रजेश शर्मा, रघुनाथपुर

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। हमारी सभ्यता के प्रारम्भिक काल का पुरातात्त्विक विश्लेषण आज भी उपस्थित नहीं है। ऐसी परिस्थिति में भारतीय ग्रन्थ वेद, पुराण, उपनिषद् आदि हमें हमारे अतीत की भव्यता, वैज्ञानिक कुशलता, आयुर्वेदिक दक्षता एवं जीवन के अधिकांश आयामों में हमारी तार्किक अनुभूति का बोध कराते हैं। अत: यह अत्यावश्यक है कि हम अपने वैदिक एवं पौराणिक मूल्यों को परिरक्षित रखें, जिससे कि हमारी आने वाली पीढ़ी को एक आधारभूत संरचना मिल सके, जिस पर वे अपने वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक प्रासाद खड़ा कर सकें। इस प्रकार हमारे प्राचीन ग्रन्थ वह उत्कृष्ट सम्मिश्रण है जो आधुनिक वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विकास के ज्ञानचक्षु हैं। कथावाचन एवं श्रवण एक परिष्कृत माध्यम है जो हमें हमारे अतीत से जोड़कर वर्तमान को सार्थक बनाते हुए भविष्य के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रक्रिया की महत्ता का बोध इस बात से भी लगाया जा सकता हैं कि जब तक ताम्रपत्र पर लिखने की कला का विकास नहीं हुआ तब तक यही वह माध्यम था जिसने हमारे ज्ञान को सङ्कलित रखा तथा उस काल के प्रवाह के साथ एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क को प्रेषित करता रहा। आज जब भौतिक विज्ञान ने इतनी तरक्की कर ली है तब भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों की मौलिकता का परिरक्षण भी कथावाचन से ही हो रहा है।

इसी आलोक में अभी दिसम्बर महीने में विक्रम-पालीगंज थाना के रघुनाथपुर ग्राम में श्रीमद्-भागवत महापुराण का सप्ताह कथावाचन **श्री स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज** एवं उनके परम शिष्य **श्री हरेराम स्वामी जी** के मुखरविन्द से सम्पन्न हुआ। इस कथा के लिए सञ्चालक एवं संवाहक का कार्य किया स्व० श्री उदय नारायण सिंह उर्फ सरदार फुदन सिंह की धर्मपत्नी तथा उनके पुत्रों ने। इस कथा की महत्ता स्वयंसिद्ध है; परन्तु इस पर प्रकाश डालते हुए कुछ लिखना इस कार्यक्रम से जुड़े लोगों के प्रयासों को मूर्तरूप में उल्लेखित करना है। अत: प्रस्तुत है इस कल्याणकारी कार्य का एक सङ्क्षिप्त विवरण—

(१) पुराण—पुराणों की महत्ता इतनी है कि इन्हें पञ्चमवेद की संज्ञा भी दी जाती है। वेद तो अपौरुषेय हैं; परन्तु पुराण भी उनकी श्रेणी की उत्कृष्टता रखते हैं। पुराण दैव स्तुति होने के साथ-साथ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का वैज्ञानिक विश्लेषण भी करते हैं। अत: पुराण आध्यात्म एवं विज्ञान का इष्टतम एकीकरण हैं। यद्यपि आध्यात्म भी विज्ञान है तथा विज्ञान भी अध्यात्म है। कुल पुराण कितने हुए इसका ज्ञान शायद हमें आज भी नहीं है; परन्तु उनमें से अट्ठारह उत्कृष्टतम रचनाओं को महापुराण की संज्ञा दी गई है। इन महापुराणों में सङ्कलित श्लोक सत्त्व, रज अथवा तम गुणों के द्योतक हैं। पद्मपुराण के अनुसार प्रस्तुत है वर्गीकरण—

१.१ सत्त्वगुण महापुराण—

	पुराण	श्लोक संख्या	विषय
(क)	विष्णुपुराण	२३०००	भगवान् विष्णु के अवतार, देवासुर सङ्ग्राम तथा विष्णु उपासना

(ख)	भागवतपुराण	१८०००	भगवान् विष्णु के पूर्ण अवतार, श्रीकृष्ण की स्तुति
(ग)	नारदीयपुराण	२५०००	महर्षि नारद एवं मानसपुत्र संतकुमार के वार्तालाप द्वारा भारतीय तीर्थस्थलों की महत्ता का उल्लेख
(घ)	गरुड़पुराण	१९०००	भगवान् विष्णु एवं पक्षीराज गरुड़ का वार्तालाप जो मनुष्य जीवन के अर्थ एवं कारण को उल्लेखित करता है। मृत्यु एवं उसके बाद की अवस्थाओं का भी वर्णन है।
(ङ)	पद्मपुराण	५५०००	पाँच खण्ड— प्रथम—महर्षि पुलस्तेय द्वारा धर्म एवं धर्मसारगर्भ का वर्णन द्वितीय—पृथ्वी का विस्तृत वर्णन तृतीय—ब्रह्माण्ड का विवरण तथा भारतवर्ष का चित्रण चतुर्थ—राम एवं उनके कर्म तथा उनकी महिमा पञ्चम—शिव, पार्वती एवं धर्म का मूलभूत रूप
(च)	बाराहपुराण	२४०००	बाराह अवतार तथा पृथ्वी की रक्षा

१.२ रजस् गुण संबद्ध पुराण—

(क)	ब्रह्माण्डपुराण	१२०००	**खण्ड–१ (प्रक्रिया पद एवं अनुसंग पद)**—रोमहर्षण का कुरुक्षेत्र गमन, राजा पुरुरवा एवं उनके पुत्र अयु का वर्णन, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, समय का सामञ्जस्य, काल गणना, पृथ्वी का भौगोलिक वर्गीकरण, ब्रह्मा के पुत्र, राजा मनु, सौरमण्डल, पुरुरवा का पितर मिलन, भगवान् शिव का नीलकण्ठ होना, सती का स्वदहन, युगों का वर्णन आदि। **खण्ड–२ (उपोद्घट पद)**—महर्षियों एवं स्वयंभू प्रभु का उद्गम नरसिंह अवतार श्राद्ध का वर्णन, परशुराम वृत्तान्त, वैवश्वत् मनु वृत्तान्त। **खण्ड–३ (उपसंहार)**—ब्रह्माण्ड का विनाश एवं पुनर्निर्माण, अगस्त्य ऋषि का वृत्तान्त, हस्तमुद्राएँ एवं उनका धार्मिक महत्त्व आदि।
(ख)	ब्रह्मवैवर्तपुराण	१७०००	खण्ड–१ : ब्रह्माण्ड की व्युत्पत्ति खण्ड–२ : देवी पूजन एवं उनकी व्युत्पत्ति खण्ड–३ : गणेश चरित खण्ड–४ : भगवान् कृष्ण
(ग)	मार्कण्डेयपुराण	९००	देवी महात्म्य

(घ)	भविष्यपुराण		यद्यपि यह एक पुराण है; परन्तु भविष्य का व्याख्यान किया गया है यहाँ।
(ङ)	वामनपुराण	१०,०००	कुरुक्षेत्र का वर्णन
(च)	ब्रह्मपुराण	१०,०००	ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, श्रीकृष्ण, श्रीराम, गोदावरी नदी का व्याख्यान

१.३ तमस् गुण संबद्ध पुराण—

(क)	मत्स्यपुराण	१४०००	मत्स्य अवतार एवं राज वंशावली
(ख)	कूर्मपुराण	१७०००	द्वितीय विष्णु अवतार
(ग)	लिङ्गपुराण	११०००	शिव महिमा व्याख्यान
(घ)	स्कन्दपुराण	८१,१०२	भारतीय तीर्थ स्थल
(ङ)	शिवपुराण	२४०००	शिव स्तुति
(च)	अग्निपुराण	१५४००	वास्तुशास्त्र एवं रत्न ज्ञान

सभी १८ पुराणों के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुराण जीवन के सभी आयामों को छूते हैं तथा उनकी विस्तृत व्याख्या भी करते हैं। किसी भी पुराण का कोई भी अंश दूसरे पुराण पर असर नहीं डालता, अत: सारे पुराण सामूहिक रूप से अपने आप में सम्पूर्ण हैं। अर्थात् इनकी महिमा इतनी है कि व्यावहारिक जीवन में इनका प्रयोग मानव जीवन के कल्याण के लिए आवश्यक है।

(२) श्रीमद्भागवत महापुराण—जिस प्रकार 'ॐ' शब्द स्वयंभू प्रभु का शब्दरूप है उसी प्रकार भागवत महापुराण श्रीमन्नारायण भगवान् के यथारूप का ज्ञान है।

सर्ववेदान्त सारम् यद्ब्रह्मात्मैकत्व लक्षणं वास्वैद्वितीयम् तनिश्घम् कैवल्याप्रयोजनम्।

भागवत महापुराण का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। यह सभी पुराणों का सार है तथा भक्ति का सोपान है। यह पुराण मर्यादा मार्ग, अनुग्रह मार्ग के साथ प्रेरणादायी विविध उपाख्यानों का समन्वय है।

पारम्परिक रूप में ऐसा समझा जाता है कि यह पुराण स्वयं भगवान् नारायण द्वारा ब्रह्माजी को सुनाया गया था। ब्रह्मा जी ने नारद जी को बताया, नारद जी ने ऋषि वेदव्यास को सुनाया तथा वेदव्यास जी ने शुकदेव जी को एवं शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को।

श्रीभागवतपुराण के अनुसार भगवान् नारायण 'परब्रह्म' हैं जिन्होंने बहुत से ब्रह्माण्ड की रचना की है। जब नारायण प्रभु, रजोगुण को धारण कर ब्रह्माजी के रूप में आते हैं तो ब्रह्माण्ड में चौदह संसार की रचना करते हैं। जब वे तमस गुण को धारण करते हैं तो महाकल्प के अन्त में रुद्र रूप में ब्रह्माण्ड का संहार करते हैं; परन्तु सत्त्वगुण में सर्वकल्याणकारी रूप भगवान् विष्णु के रूप में ब्रह्माण्ड के पालक भी वही हैं।

यह महापुराण मूल रूप से विश्व के सार को रेखाङ्कित करता है तथा ये मूल हैं—धर्म, काल, अर्थ एवं मोक्ष। यह मुख्यत: एक भक्ति रचना है जो भगवान् विष्णु के श्रीकृष्ण रूप की आराधना के द्वारा मोक्ष के तरफ अग्रसर करता है।

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार—

भक्ति— भक्ति का सार आत्मा का परमात्मा से एकीकरण है।

साङ्ख्य— ब्रह्म ही जीव को अपने अन्दर गुप्त रूप में उत्पन्न करते हैं तथा स्वयं की प्रेरणा से उसका पालन-पोषण एवं संहार करते हैं। साङ्ख्य का लक्ष्य खुद ब्रह्म हैं। यहाँ ब्रह्म का रूप श्रीकृष्ण हैं।

विशिष्टाद्वैत—सम्पूर्ण संसार परब्रह्म का भावबोधक रूप है।

धर्म— धर्म स्वयं का ज्ञान है। यह ब्रह्म के लिए स्वयं का निष्ठापूर्ण समर्पण है।

योग— योग-धर्म की अनुभूति का माध्यम है। यह भक्ति का वह माध्यम है जो जीव को ब्रह्म के प्रति एकाग्रचित करता है।

भागवतमहापुराण बारह स्कन्द में विभाजित है—

प्रथम स्कन्द—इसमें भक्तियोग एवं उसके फलस्वरूप उत्पन्न वैराग्य का वर्णन है।

द्वितीय स्कन्द—ब्रह्माण्ड की व्यूत्पत्ति एवं विराट ब्रह्म।

तृतीय स्कन्द—भगवान् का बालचरित।

चतुर्थ स्कन्द—राजर्षि ध्रुव एवं पृथु का चित्रण।

पञ्चम स्कन्द—प्रकृति में व्याप्त ब्रह्मरूप अर्थात् पर्वत, नदी, समुद्र आदि का वर्णन।

षष्ठ स्कन्द—देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी का जन्म।

सप्तम स्कन्द—हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष एवं प्रह्लाद का वर्णन।

अष्टम स्कन्द—गजेन्द्र मोक्ष एवं वामन अवतार।

नवम स्कन्द—श्रीराम कथा तथा अन्य राजवंश।

दशम स्कन्द—श्रीकृष्ण रूप की लीलाएँ।

एकादश स्कन्द—यादवों का संहार।

द्वादश स्कन्द—विभिन्न युग, प्रलय, ब्रह्म के स्वरूप।

इस प्रकार अगर सभी बारह स्कन्दों को एक साथ एकीकृत करके देखें तो यह महापुराण संसार की उत्पत्ति, पालन एवं संहार सबका वर्णन करता है। साथ में यह महापुराण मोक्ष प्राप्ति का साधन भी है। यहाँ यह एक उत्तम कार्य होगा कि स्कन्द एकादश को थोड़ा विस्तार से देखा जाए।

(शेष अगले अङ्क में)

काष्ठविग्रह भगवान्

ब्रह्मा ने कहा—राजन्! यह काष्ठ की मूर्ति है, ऐसा सोचकर तुम्हारे मन में इसके प्रति साधारण प्रतिमा-बुद्धि न हो। वास्तव में यह परब्रह्म का स्वरूप है। जो विदारण करे या दान दे, उसे दारु कहते हैं। परब्रह्म परमात्मा स्वभाव से ही सब दु:खों का विदारण और अखण्ड आनन्द का दान करते हैं। इसलिये उनका नाम दारु है। इस प्रकार चारों वेदों के अनुसार भगवान् श्रीहरि दारुमय हैं। वे जगत् के स्रष्टा हैं। इसलिए उन्होंने अपने को भी दारुमय स्वरूप में प्रकट कर लिया। शब्दब्रह्म और परब्रह्म में कोई भेद नहीं है। प्रलय के समय दोनों एक हैं। केवल सृष्टिकाल में व्यावहारिक भेद रहता है। शब्द और अर्थ दोनों एक-दूसरे की अपेक्षा रखने वाले हैं। अर्थ के अभाव में शब्द नहीं और शब्द के अभाव में अर्थबोध नहीं होता। इसलिये चारों वेद जैसे शब्द हैं, वैसे ही अर्थ भी हैं। भगवान् हलधर ऋग्वेद स्वरूप हैं। नृसिंहजी सामवेद रूप हैं। सुभद्रा देवी यजुर्वेद की मूर्ति हैं और यह सुदर्शन चक्र अथर्ववेद का स्वरूप माना गया है। वेद चार हैं–यह भेद दृष्टि है। अभेद दृष्टि से सम्पूर्ण वेद एक ही राशि हैं। अत: तुम्हारे मन में सन्देह नहीं होना चाहिए। एक ही सर्वव्यापी भगवान् अनेक रूपों में व्यक्त होते हैं। अन्य अवतारों में भी वे इसी न्याय से बर्ताव करते हैं।

राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् जगन्नाथ के भेद और अभेद दोनों ही बताये हैं। जिससे तुम्हारे मन को सन्तोष हो, उसी दृष्टि से भक्तिपूर्वक भगवान् की आराधना करो। भगवान् सर्वरूपमय हैं तथा सर्वमन्त्रमय हैं। जो जिस प्रकार उनकी आराधना करता है, उसे वे उसी प्रकार फल देते हैं। इसी महिमा से भगवान् विष्णु यहाँ प्रकट हुए हैं। जिसका जितना विश्वास है, उसे उतनी सिद्धि होती है। तुम शुद्ध चित्त से मन, वाणी और क्रिया द्वारा यहाँ दारु-विग्रह (काष्ठमय स्वरूप) धारण करने वाले भगवान् गोविन्द की आराधना करो और इस मन्त्रराज के द्वारा श्रीहरि की पूजा किया करो—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्यु मृत्युं नमाम्यहम्।।

(मन्त्रराज अनुष्टुप)

इस मन्त्र से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र न हुआ है, न होगा। इससे पूजित होने पर भगवान् विष्णु तत्काल प्रसन्न होते हैं तथा भक्तवत्सल भगवान् अपना परम धाम देते हैं। राजन्! मैं तुमसे एक तत्त्व की बात करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। समुद्र के तट पर वटवृक्ष के मूल के समीप नीलाचल पर्वत के शिखर पर निवास करने वाले जो काष्ठमयी मूर्ति के व्याज से साक्षात् अमृतमय परब्रह्म हैं, उनका दर्शन करके मनुष्य निश्चय ही मोक्ष को प्राप्त होता है।

ब्रह्माजी ने लोक शिक्षा के लिए राजा से यह सब कहकर पहले प्रकाश में आये हुए भगवान् विष्णु के चतुर्विध स्वरूप को प्रकट किया। रथ से उतारते समय जो चार मूर्तियाँ रखी गयी थीं, अब वे ही सिंहासन के ऊपर विराजमान हो गयीं, यह सब लोगों ने प्रत्यक्ष देखा। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने द्वादशाक्षर मन्त्र से बलभद्रजी की, पुरुषसूक्त से भगवान् नारायण की, देवीसूक्त से सुभद्राजी की तथा द्वादशाक्षर **(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)** मन्त्र से सुदर्शन चक्र की पूजा की। उसके बाद राजा पर अनुग्रह करने के लिए उन्होंने भगवान् से इस प्रकार निवेदन किया।

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! भक्तों पर अनुग्रह करने वाले देवदेवेश्वर! इन्द्रद्युम्न दीर्घकाल से आपकी भक्ति करते आ रहे हैं और अब इन्हे आपका दर्शन सायुज्य मुक्ति का कारण है तो भी ये भक्ति योग के

द्वारा आपकी पूजा करने की ही अभिलाषा रखते हैं। इसलिये इन्हें आज्ञा दीजिये, जिससे ये भक्तियोग के द्वारा देश-कालोचित व्रत आदि तथा भाँति-भाँति के उपचारों से आपकी पूजा करते रहें।

ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार निवेदन करने पर काष्ठमय शरीर धारण किये होने पर भी भगवान् ने मुस्कराते हुये गम्भीर वाणी में कहा—इन्द्रद्युम्न! मैं तुम्हारी भक्ति तथा निष्काम कर्मों से बहुत प्रसन्न हूँ। मुझमें तुम्हारी स्थिर भक्ति हो। करोड़ों का धन लगाकर जो तुमने मेरा मन्दिर बनवाया है, इसके भङ्ग हो जाने पर भी इस स्थान का परित्याग मैं नहीं करूँगा। कालान्तर में भी जो कोई दूसरा पुरुष यहाँ मन्दिर बनवायेगा, तुम्हारे प्रेम से उसमें भी मेरी स्थिति रहेगी। मन्दिर भङ्ग होने पर भी इस स्थल का त्याग मैं नहीं करूँगा। जब तक ब्रह्माजी का दूसरा परार्ध पूरा होगा, तब तक इस काष्ठमय विग्रह से ही मैं यहाँ निवास करूँगा। सत्ययुग के प्रथम ज्येष्ठ में यज्ञ का आरम्भ हुआ और ज्येष्ठ की अमावस्या को (यह तिथि गुजराज के हिसाब से है। अन्य कई प्रान्तों की गणना से यह आषाढ़ कृष्ण अमावस्या होती है। शुक्ल पक्ष में सभी प्रान्तों की गणना समान है।) मैंने अवतार लिया है। वही मेरा पवित्र जन्मदिन है। उस दिन महास्नान की विधि से प्रत्यर्चा में अधिवासपूर्वक मुझे स्नान कराना चाहिये। ऐसा करने से मैं कोटि जन्मों में उपार्जित पापराशि का विनाश कर डालूँगा। उस दिन मेरा दर्शन करने वालों को सम्पूर्ण तीर्थों, यज्ञों और दानों का फल प्राप्त होगा। वटवृक्ष के उत्तर एक सर्वतीर्थमय कूप है, उसे खोदकर प्रकाश में लाओ। ज्येष्ठ की अमावस्या को प्रात:काल मुझको, बलभद्रजी को और सुभद्रा को उस कूप के जल से स्नान कराकर मनुष्य मेरे लोक को प्राप्त कर लेगा। आषाढ़ मास की शुक्ल द्वितीया यदि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो, तो वह इस तीर्थ में मोक्षदायिनी मानी गयी है। नक्षत्र के अभाव में भी मेरी प्रसन्नता के लिए उस तिथि को यात्रा करनी चाहिये। आषाढ़ शुक्ल पक्ष की पुष्य नक्षत्रयुक्त द्वितीया तिथि को मुझको, बलभद्र जी को, सुभद्रा को रथ पर बिठाकर महान् उत्सव के लिये बहुत से ब्राह्मणों को तृप्त करके 'गुण्डिचामण्डप' नामक स्थान को ले जाना चाहिये, जहाँ पहले मैं प्रकट हुआ था। सहस्र अश्वमेध यज्ञ की महावेदी उस समय वहीं थी। उससे बढ़कर पवित्र स्थान इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। जैसे ब्रह्मा के अनुरोध से और तुम्हारे बनवाये हुए इस महामन्दिर से इस समय यह नीलाचल का शिखर मेरी अत्यन्त प्रसन्नता का कारण हो रहा है, उसी प्रकार नृसिंह क्षेत्र में तुम्हारे यज्ञ की वह महावेदी तथा मेरी उत्पत्ति का वह मण्डप मुझे अत्यन्त प्रसन्नता देने वाला है। मैं बहुत समय तक वहाँ स्थित रहा हूँ इसलिये उस पर मेरा बहुत प्रेम है, मैं यहाँ तुम्हारी भक्ति से सदैव स्थित रहूँगा। मेरे उत्थान (हरिबोधिनी एकादशी), मेरे शयन (हरिशयनी एकादशी), मेरे करवट बदलने (भाद्रपद शुक्ला एकादशी), मेरे मार्ग प्रावरण तथा पुष्य स्नान का महोत्सव करें। फाल्गुन की पूर्णिमा को मेरे लिये दोलोत्सव करना चाहिये। जो दोला में दक्षिणाभि-मुख पूजित हुए मेरा दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि सब पापों से मुक्त हो जाते हैं।

।। सवैया ।।

कंस से वीर को कृष्ण हते
ऐसी वीरता कोई दिखाई नहीं है।
नीति सिखाई है पार्थ को युद्ध में
वसी तो कोई सिखाई नहीं है।
रंक सुदामा को राव किये
ऐसी मित्रता कोई निभाई नहीं है।
यूँ तो हुए लीलाधारी अनेक
पै कृष्ण सी लीला दिखाई नहीं है।

दारू-ब्रह्म जगन्नाथ की जय

अनादि काल से महाप्रभु श्रीजगन्नाथ की पावन भूमि पुरी न केवल भारतवर्ष में बल्कि विश्व के अनेक आकर्षण केन्द्रों में एक प्रधान केन्द्र बिन्दु रही है। यहाँ से निकाली जाने वाली विश्वप्रसिद्ध रथयात्रा भारतीय आत्मचेतना का प्रतीक है, जो हमेशा से शान्ति, सद्भाव, प्रेम, एकता और विश्व-मैत्री का संदेश देती है। इस क्षेत्र को श्रीक्षेत्र, पुरुषोत्तम क्षेत्र, शङ्ख क्षेत्र, नीलाद्रि, नीलगिरि, मर्त्य वैकुण्ठ, नीलाचल, नित्य वैकुण्ठ, दशावतार क्षेत्र और जगन्नाथ धाम आदि नामों से शास्त्रकारों ने अभिव्यक्त किया है। यहाँ पर विराजमान प्रभु को नीलमाधव, दारूब्रह्म, पतितपावन, लोकबन्धु, जगा, लोकेश्वर, कालिया और जगन्नाथ आदि नामों से भक्तगण पुकारते हैं। महाप्रभु जगन्नाथ आनन्दमय चेतना और भक्तिभाव के उद्रेक हैं। वे आदिदेव, परमदेव और साक्षात् परमब्रह्म परमेश्वर हैं। तभी तो विश्वभर से लाखों श्रद्धालु भक्त पुरी आते हैं और प्रभु जगन्नाथ के दर्शन कर अपने जीवन को सार्थक बनाते हैं। स्कन्दपुराण में कहा भी गया है—

रथस्य वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

पुरीधाम अलग-अलग युगों में अलग-अलग नामों से विख्यात रहा है। यह क्रमशः श्रीक्षेत्र, शङ्खक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र और नीलाद्रि (नीलाचल) क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध रहा है। वर्तमान में पुरी क्षेत्र नाम से यह विख्यात है।

पुरी में विराजमान दारूब्रह्म जगन्नाथ की कथा अनेक प्रकार की मिलती है। एक कथा इस प्रकार की है—द्वापर युग में एक बार द्वारका में श्रीकृष्ण की पटरानियों ने माता रोहिणी से कृष्ण की व्रजलीला एवं गोपियों के प्रेम प्रसङ्ग को सुनाने का आग्रह किया। पहले तो माता रोहिणी ने टालने का बहुत प्रयास किया, लेकिन पटरानियों के बहुत आग्रह करने पर उन्हें सुनाना ही पड़ा। सुभद्राजी की उपस्थिति वहाँ उचित नहीं जानकर माता रोहिणी ने उन्हें द्वार के बारह खड़े रहने को कहा और यह भी आदेश दिया कि वे किसी को उस वक्त भीतर नहीं आने दें। तदनन्तर उन्होंने गोपियों के प्रेम प्रसङ्ग वाली कथा शुरू की। ठीक उसी समय श्रीकृष्ण और उनके बड़े भाई बलराम जी वहाँ पधार गये। सुभद्राजी दोनों भाइयों के बीच में खड़ी होकर माता रोहिणी के आदेशानुसार उन्हें भीतर जाने से रोक दिया। उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आ गए। देवर्षि ने जो यह प्रेम द्रवित रूप तीनों को देखा तो श्रीकृष्ण से प्रार्थना किया कि आप तीनों इसी रूप में विराजमान हों। श्रीकृष्ण ने महर्षि नारद की प्रार्थना स्वीकार कर ली और कहा कि कलियुग में दारू विग्रह में इसी रूप में हम तीनों स्थित होंगे और ऐसा ही हुआ भी। तब से प्रभु जगन्नाथ दारू विग्रह रूप में विद्यमान होकर भक्तों के मनोरथ को पूर्ण कर रहे हैं।

भगवान् श्रीजगन्नाथ की कृपा अपने भक्तों पर अपार रही है। इन भक्तों में एक भक्त कवि जयदेव भी थे। जयदेव कवि अपनी रचना प्रभु जगन्नाथ को सुनाया करते थे। एक समय की बात है कवि अपनी अष्टपदी लिख रहे थे—

प्रिये चारू शीले मुञ्च मान मनिदानम्।
स्मर गरल खण्डनं पत्र शिरक्षि मण्डनम्।।

तक लिख चुके थे। आगे क्या लिखें, सोच नहीं पा रहे थे। उनकी कलम रुक गई। बेचैन से हो गए। पङ्क्ति अपूर्ण छोड़ दी और सो गए। जयदेव के वेश में जगन्नाथ प्रभु आए और उनकी पत्नी से कहा—जल्दी भोजन लाओ, भूख लगी है। भोजन किया। शयन कक्ष में गए और जयदेव की तीसरी पङ्क्ति लिख दी—

'देहि मे पद पल्लव मुदारम्' अर्थात् सिर पर अपने चरण-पल्लव रखो। जयदेव कुछ समय बाद जगे और हाथ-पैर धोकर अपनी पत्नी से कहा—थाली लगाओ, भूख लगी है। पत्नी ने कहा—पागल हो गए हो, अभी-अभी खाकर सोने गए थे, तुम्हें क्या इतनी जल्दी भूख लग गई? जयदेव पुन: पागल की तरह अपने शयन कक्ष में घुसे। देखा अष्टपदी की तीसरी पङ्क्ति लिखी हुई है और शयन कक्ष सुगन्ध से दमक रहा है। जयदेव अपनी पत्नी के पास आए और कहने लगे कि तुम बड़भागी हो। प्रभु जगन्नाथ ने तुम्हारे हाथों का भोजन किया। पत्नी ने तुरन्त कहा—स्वामि! दारूब्रह्म जगन्नाथ प्रभु तो आपकी रचना में समा गए हैं। आपकी रचना तो भगवदीय रचना हो गई। अब कहिए कि मैं बड़भागी हूँ या आप?

इसी प्रकार की एक कथा रघु केवट की भी सुनी जाती है। पुरी से लगभग २५ किलोमीटर की दूरी पर पुरी-भुवनेश्वर मार्ग पर पिपली नामक एक गाँव है। वहाँ रघु केवट नाम का एक व्यक्ति रहता था। वह धन्धा करता था मछली पकड़ने का, लेकिन था बड़ा ही धार्मिक।

एक दिन रघु ने सोचा कि जीव हत्या करना पाप है। फिर क्या था? मछली पकड़ना बन्द कर दिया। इधर उसके घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त सोचनीय हो गई। वृद्धा माँ मरणासन्न हो गई, पत्नी और बच्चे भूखों मरने लगे।

फिर एक दिन उसे गीता का उपदेश याद आया कि 'कर्म ही धर्म है' और दूसरे दिन वह अपना जाल ठीक-ठाक किया और चल पड़ा मछली पकड़ने। जाल जल में डाल दिया। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि जाल में कोई भारी और बड़ी मछली फँस गई है। उसने जाल बाहर निकाला। देखा कि एक रोहू मछली है। बहुत खुश हुआ। सोचा इसे बेचकर वह अपनी माँ का इलाज करायेगा। लेकिन 'यह क्या? जैसे ही उस मछली को मारना चाहा मछली आदमी के स्वर में 'जय जगन्नाथ! जय जगन्नाथ!! की रट लगाने लगी। रघु ने सोचा कि यह प्रभु जगन्नाथ की कैसी लीला है। रघु ने मछली को पास वाले एक जङ्गल के तालाब में छोड़ दिया और अपने को प्रभु जगन्नाथ की रटन में लीन कर लिया। रघु सूखकर काँटा हो गया।

एक दिन एक ब्राह्मण के वेष में प्रभु जगन्नाथ आए। उन्होंने रघु से पूछा—'भक्त यह क्या कर रहे हो? क्या ऐसा करने से प्रभु जगन्नाथ मिलेंगे? रघु ने कोई उत्तर नहीं दिया। जैसे ही उसने अपनी आँखें खोली, देखा कि प्रभु जगन्नाथ साक्षात् वहाँ खड़े हैं। रघु ने साष्टांग किया। भगवान् जगन्नाथ ने कहा—'वत्स! मैं तुम से प्रसन्न हूँ। वर माँगो। रघु केवट प्रभु के चरणों पर गिर पड़ा और कहा—हे पतितपावन! अगर आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें आजीवन अपनी भक्ति का वरदान दें। तथास्तु कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गए।

इस प्रकार अनेक रूपों में प्रभु जगन्नाथ अपनी लीलाओं के साथ आस्था और विश्वास के दारू-विग्रह रूप में अपनी बहन सुभद्रा और बड़े भाई बलभद्र के साथ पुरी में विराजमान हैं। जो भी उनके दर्शन करता है और महाप्रसाद पाता है वह पुनर्जन्म रूपी भवबन्धन से सदा-सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

नीलाद्रौ शङ्खमध्ये शतदलकमले रत्नसिंहासनस्थं-
सर्वालङ्कारयुक्तं नवघनरुचिरं संयुतञ्चाग्रजेन।
भद्रायावामभागे रथचरणयुतं ब्रह्मरुद्रेन्द्रवंद्यं-
वेदानां सारमीशं सुजनपरिवृतं ब्रह्मदारुं स्मरामि।।

प्रभु जगन्नाथ का नवकलेवर

शास्त्रीय परम्परा के अनुसार महाप्रभु श्रीजगन्नाथ का नवकलेवर पुण्यभूमि भारत की सांस्कृतिक आस्था का प्रमाण है। इस वर्ष १७ जुलाई २०१५ को महाबाहो भगवान् जगन्नाथ का नवकलेवर १९ वर्षों के बाद परिवर्तित होने जा रहा है। जिस वर्ष जोड़ा आषाढ़ का संयोग होता है, भगवान् श्रीजगन्नाथ का नवकलेवर बदलता है। माङ्गलिक कार्यों के लिए मलमास त्याज्य माना गया है। संसार के लोग जिसका त्याग कर देते हैं, उसे ईश्वर अपना लेते हैं। शायद यही कारण रहा होगा कि त्याज्य मलमास को भगवान् ने स्वीकार कर लिया और मलमास का नाम पुरुषोत्तम मास हो गया। पुरी में नवकलेवर के लिए जो स्वतन्त्र उत्सव (यात्रा) मनाया जाता है, उसे वनयाग (वनयज्ञ) के नाम से जाना जाता है। यह उत्सव चैत्र महीने के शुक्लपक्ष दशमी तिथि को मध्याह्न की 'धूप पूजन' के पश्चात् भगवान् जगन्नाथ की विशेष पूजा के बाद से प्रारम्भ हो जाता है। श्री विग्रहों (वृक्षों) की तलाश हेतु अर्चकगण काकटपुर की यात्रा प्रारम्भ करते हैं। परम्परानुसार काकटपुर क्षेत्र के वन में ही मूर्तियों के लिए वृक्ष मिलते हैं। दारू अन्वेषी दल काकटपुर जाकर कलकल निनादिनी पवित्र प्राची नदी के निकट स्थित मठ में रुकते हैं। वहाँ से कुछ दूर पर मन्दिर में स्थित भगवान् की सेविका मङ्गला देवी को ये लोग पुरी से लाये गये प्रसाद एवं फूल माला अर्पण करते हैं। पूजन अर्चन के पश्चात् अर्चकगण स्वप्नावती मन्त्र जपते हुये सो जाते हैं और स्वप्न में ही दारू प्राप्ति स्थान का निर्देश उन लोगों को प्राप्त हो जाता है। स्वप्न में प्राप्त निर्देश के अनुसार उस वृक्षों में निम्न लक्षण होने चाहिए।

सबसे पहले तो वह दारू (वृक्ष) नीम का होना चाहिए। दारू के काण्ड की लम्बाई ७ फुट से १० फुट के मध्य हो। उसमें प्रधान तीन शाखायें होनी चाहिए। उस दारू (वृक्ष) के निकट मन्दिर, मठ, नदी, तालाब, श्मशान, दीमक की वाँवी, बेल का पेड़, वरुण का पेड, सहाड़ा का पेड़, तुलसी का पौधा और गड्ढा होना चाहिए। उस दीमक की वॉवी या गड्ढे में साँप उस वृक्ष के रखवाले के रूप में रहना चाहिए। वृक्ष की कोई शाखा कटी हुई नहीं होनी चाहिए। वृक्ष पर किसी पक्षी का कोई घोंसला नहीं हो तथा वृक्ष के तने की मोटाई २ मीटर से ३ मीटर के मध्य होनी चाहिए। इसके साथ ही उस वृक्ष पर शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म का चिह्न अङ्कित होना चाहिए। दारू निर्णय के बाद यथाविधि वनयाग (वनयज्ञ) की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। विधिवत् यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड तथा अङ्कुर-रोपण-गृह निर्मित होने के बाद ५ वेदज्ञ ब्राह्मण अंशग्रहण करते हैं। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् चाँदी की कुल्हाड़ी से उस पवित्र वृक्ष को काटा जाता है। पुरी में उसे लाकर उसी दारू से भगवान् जगन्नाथ का नूतन कलेवर निर्मित होता है। आषाढ़ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के दिन नव निर्मित ठाकुर जी को स्नान कराकर प्राणप्रतिष्ठा की जाती है। श्रीसूक्त और पुरुषसूक्त से नवकलेवरधारी भगवान् को प्राणन्यास कराया जाता है। इसी दिन अत्यन्त गुप्त रूप से महाप्रभु का घट परिवर्तन किया जाता है। अर्थात् रात्रि (शुभ मुहूर्त्त) में पुरातन विग्रहों से मणि (ब्रह्म पिण्ड नील माधव शालग्राम) निकालकर नये विग्रहों में स्थापित किये जाते हैं। इस दृश्य को कोई व्यक्ति अपनी आँखों से नहीं देख सकता। इसके बाद नये विग्रहों को अनेक प्रकार से अलङ्कृत किया जाता है। पुराने विग्रहों को श्रीमन्दिर के निकट में ही श्रीवैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध स्थान परलतावृक्ष के नीचे समाधि दे दी जाती है। यह समाधि पर्व भगवान् जगन्नाथ के श्रीकृष्णावतार की स्मृति दिलाता है।

पद्मपुराण के अनुसार आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष द्वितीया तिथि को भगवान् जगन्नाथ की पावन रथयात्रा प्रारम्भ होती है। रथयात्रा के दिन देव-प्रतिमाओं (श्रीजगन्नाथजी, बलभद्रजी और सुभद्राजी) को रथ पर विराजमान कराने के लिए विशेष गाजे-बाजे के साथ लाया जाता है। यह दृश्य अत्यन्त ही मनोरम होता है। ऐसा लगता है कि जैसे देव-प्रतिमाएँ स्वयं चलकर आ रही हों। देव-प्रतिमाओं के रथ पर विराजमान होने के बाद पुरी के गजपति महाराजा पारम्परिक रीति से पालकी में बैठकर पधारते हैं और रथ पर चढ़कर एक सोने की झाड़ू से रथ की सफाई करते हैं। तत्पश्चात् राजा भगवान् का पूजन करते हैं और रथ को खींचकर आगे बढ़ाते हैं। रथ सिंहद्वार से चलकर गुण्डिचा मन्दिर तक (जो तीन कि०मी० की दूरी पर स्थित है) पहुँचता है। इस दूरी को पार करने में २४ घण्टे से भी अधिक समय लगता है गुण्डिचा मन्दिर में भगवान् ७ दिन निवास करते हैं। दशमी तिथि को वापसी यात्रा होती है; जिसे उड़िया भाषा में बाहुड़ा यात्रा कहते हैं। रथयात्रा महोत्सव एक ऐसा अनुपम पर्व है, जिसे विश्व भर के लोग जात-पात, भाषा-धर्म भेद को भूलकर भगवान् श्रीदारू ब्रह्म जगन्नाथ के दर्शन करते हैं। जगन्नाथ मन्दिर में किसी भी प्रकार की छुआछूत की भावना लेशमात्र भी नहीं है। ब्राह्मण भी भगवान् श्रीजगन्नाथ का महाप्रसाद चाण्डाल के साथ में ग्रहण करते हैं। लेकिन विदेशी एवम् अन्य धर्म के भक्तों को दर्शन का सुअवसर रथयात्रा में ही प्राप्त होता है। लाखों भक्त एवं पर्यटक प्रत्येक वर्ष रथयात्रा में पुरी आकर आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति करते हैं। साथ ही साथ अपने मानव जीवन को धन्य बनाते हैं।

●

भगवान् जगन्नाथ

भगवान् जगन्नाथ के नीलमणिमय विग्रह का वर्णन

भक्तवत्सल भगवान् जगन्नाथ एवम् उनके क्षेत्र का वर्णन करना किसी के लिए भी बड़ा कठिन है। तथापि अकारण-करुणावरुणालय प्रभु जगन्नाथ के कृपा से ही राजा इन्द्रद्युम्न के पूछने पर महात्मा विद्यापति ने नीलाचलवासी श्रीविष्णु के स्वरूप का (नीलमणिमय विग्रह का) निम्न रूप से वर्णन किया। उन्होंने बताया कि मैं सन्ध्या समय पुरुषोत्तम तीर्थ में श्रीभगवान् के समीप पहुँचा था। उस समय वहाँ दिव्य सुगन्ध युक्त हवा चल रही थी। आकाश मार्ग में देवताओं का सम्मिलित शब्द सुनायी पड़ती थी। वहाँ विश्वावसु नामक शवर मेरा मित्र है। उसने दिव्य उपहार, भोजन तथा यह माला मुझे प्रदान किया था।

कभी मलिन न होने वाली यह बहुमूल्य माला लक्ष्मी तथा राज्य का सुख प्रदान करने वाली है और दरिद्रता एवं पाप का संहार करने वाली है। इसलिये इसे आपके योग्य समझकर मैं यहाँ ले आया हूँ। भगवान् विष्णु का वह उत्तम क्षेत्र सब ओर से घने जङ्गलों से व्याप्त है। नीलाचल उसकी नाभि (केन्द्र स्थान) है, लम्बाई और चौड़ाई में वह (वर्ग के हिसाब से) पाँच कोस का बताया गया है। तीर्थराज समुद्र के तट पर उसकी स्थिति है और वह सब ओर से सुवर्णमयी बालुका द्वारा आवृत है। पर्वत के शिखर पर बहुत ऊँचा वटवृक्ष है, जो प्रलयकाल में भी स्थिर रहता है। उसकी लम्बाई एक कोस की है। वह फूल और फल से रहित तथा पल्लवों से सुशोभित है। सूर्य के हटने पर भी उसकी छाया में कोई परिवर्तन नहीं होता। उसके पश्चिम रोहिण नाम से प्रसिद्ध कुण्ड है, वहाँ जल का उद्गम है। उसमें उतरने के लिए नील पत्थरों की सीढ़ी उसकी शोभा बढ़ाती है। कुण्ड के बाहर चारों दिशाओं में स्फटिक मणि की चार वेदियाँ हैं; पापराशि का संहार करने वाले पवित्र जल से भरा हुआ वह कुण्ड

बड़ा ही मनोरम है। कुण्ड की पूर्व दिशा में जो वेदी है, उसके मध्य में शङ्ख-चक्र-गदाधारी इन्द्रनीलमणिमय भगवान् विष्णु विराजमान हैं। वह स्थान वटवृक्ष की छाया पड़ने से सदा शीतल बना रहता है।

भगवान् का वह विग्रह इक्यासी अङ्गुल ऊँचा है और सुवर्णमय कमल के ऊपर स्थित है। उस श्रीविग्रह के मुखचन्द्र से तीनों प्रकार के तापों का निवारण होता है। भगवान् के दोनों नासिकापुट तिल के फूल के समान शोभा धारण करते हैं। प्रस्तरमयी मूर्ति होने पर भी भगवान् के अधर पर सुन्दर मुस्कान की छटा छायी रहती है। हँसी से खिले हुए युगल कपोलों द्वारा ठोढ़ी बहुत सुन्दर दिखायी देती है। मुँह के दोनों कोने ऐसे दिखायी देते हैं मानों और किसी मूर्ति के मुखकोण वैसे कभी बने ही न हों। हासयुक्त अधर, कपोल, ठोढ़ी और मुँह के सुन्दर कोने आदि को धारण करने वाले भगवान् माधव विश्वकर्मा आदि शिल्पियों के लिए आदर्श बने हुए हैं। मकराकार कुण्डलों से सुशोभित दोनों कानों के द्वारा भगवान् का मुखचन्द्र गुरु और शुक्र के मध्य भाग में स्थित पूर्ण चन्द्र का उपहास कर रहा है। गले के सुन्दर आभूषण से शोभाजनक कण्ठप्रदेश के द्वारा भगवान् अपना दर्शन करने वाले पुरुषों के चित्त में दक्षिणावर्त शङ्ख से मुक्तामणि के प्रकट होने की आशङ्का उत्पन्न करते हैं। उनके कन्धे मोटे और चौड़े हैं। घुटने तक की लम्बी चार भुजाएँ हैं। वक्ष:स्थल पर स्वच्छ एवं निर्मल हार शोभा पा रहा है। दिव्य कौस्तुभमणि में पड़े हुए प्रतिबिम्ब के रूप में मानों वे चौदह भुवनों को धारण करते हैं। गहरे नाभि रूपी सरोवर में प्रविष्ट हुई सूक्ष्म रोमावलियों के कारण भगवान् का श्रीविग्रह बड़ा मनोहर प्रतीत होता है। गले में लटकता हुआ हार त्रिवली के मध्य भाग तक का स्पर्श करता है। मोती माला कमर के पास तक लटकी हुई है। वे पीताम्बर से शोभा पाते हैं। दोनों जङ्घाएँ दो खम्भों के समान जान पड़ती हैं, मानों वे मोक्ष के मङ्गलमय धाम में जाने के लिये बाहरी द्वार के आश्रय हों। भगवान् के दोनों चरण गोलाकार घुटनों, पैरों तक लटकती हुई वनमाला तथा रत्नमय कड़ों से शोभा पाते हैं, वे हार, कङ्कण, भुजबन्द और मुकुट आदि से विभूषित हैं। भगवान् अपने चारों हाथों में क्रमश: चक्र, पद्म, गदा और शङ्ख रूप में परिणत ज्ञान, अहङ्कार, ऐश्वर्य तथा शब्दब्रह्म (वेदराशि) को धारण करते हैं।

भगवान् जगन्नाथ सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुए नीलाचल के शिखर पर विराजमान हैं, जिनका दर्शन करके भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य देह बन्धन से मुक्त हो जाता है। भगवान् के वाम पार्श्व में भगवती लक्ष्मी वीणा बजा रही हैं। उनकी दृष्टि भगवान् की ओर है। वे सम्पूर्ण लावण्य का निवास तथा समस्त अलङ्कारों से विभूषित हैं। जगत् के पिता और माता भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी दोनों उस पर्वत पर निवास करते हैं। मैंने उन दोनों का दर्शन किया। वे दोनों मौन भाव से बैठे हैं और अपनी मुसकराती हुई दृष्टि से दर्शन करने वाले प्राणियों पर कृपा की वर्षा करते हैं। दीनों पर दया करने के कारण मैंने उन्हें चैतन्य रूप ही माना है। उनके पीछे अपने फणों का छत्र लगाये भगवान् शेषनाग खड़े हैं और आगे सुदर्शन चक्र को दिव्य शरीर धारण करके खड़े हुए देखा है। सुदर्शन के पीछे गरुड़जी हाथ जोड़े खड़े हैं।

इस प्रकार अद्भुत रूप धारण करने वाले साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु का दर्शन करके मेरा मन बार-बार उन्हीं की ओर दौड़ रहा है मानो कोई इसे रस्सियों में बाँधकर अपनी ओर खींच रहा हो। तीर्थ स्नान, तप, दान, देव यज्ञ और व्रतों के द्वारा भी कोई वैसे दिव्य रूप में भगवान् का दर्शन नहीं कर सकता। जो लोग निर्मल आकाश की भाँति प्रतीत होने वाले पुरुषोत्तम तीर्थनिवासी नील विग्रह भगवान् विष्णु का ध्यान करते हैं वे सब प्रकार के बन्धनों से रहित होकर भगवान् विष्णु के धाम में प्रवेश करते हैं जिसने नीलाचलनाथ भगवान् का दर्शन कर लिया है, वही दानी, वही यज्ञकर्त्ता, वही सत्यवादी, वही धर्मात्मा तथा वही सम्पूर्ण गुणों से श्रेष्ठ और समस्त जगत् में महान् है।

भगवान् जगन्नाथ एवं उनकी अद्भुत रथयात्रा

लगभग ५००० वर्ष पूर्व अपनी लीलानुरूप भगवान् श्रीकृष्ण जब वृन्दावन त्यागकर द्वारिका में अपनी पत्नियों के साथ निवास करने लगे, तभी एक बार पूर्ण सूर्यग्रहण का विरल अवसर आया। सूर्यग्रहण के इस अवसर पर सभी यदुवंशियों ने कुरुक्षेत्र में स्थित समन्त पञ्चक नामक पवित्र स्थान पर एकत्रित होने तथा स्नान, उपवास, दान आदि साधनों से अपने पापों के प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया। निश्चय के अनुरूप समस्त द्वारिका वासियों ने श्रीकृष्ण के नेतृत्व में कुरुक्षेत्र की ओर प्रस्थान किया। वृन्दावन वासियों का द्वारिका वासियों के प्रति स्वाभाविक प्रेम था। श्रीकृष्ण तो उनकी आत्मा थे। अत एव जब उन्हें ज्ञात हुआ कि सूर्यग्रहण के कारण श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र आ रहे हैं तो उनके आनन्द की सीमा न रही और उन्होंने नन्द महाराज के नेतृत्व में श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ कुरुक्षेत्र जाने का निश्चय किया। वियोगिनी राधा रानी तथा गोपियाँ दीर्घ अदम्य विरह के कारण स्वयं को रोक न सकीं, अत: वे भी अपने प्राणप्रिय श्रीकृष्ण से मिलने के लिए नन्द महाराज के साथ कुरुक्षेत्र की ओर चल दीं।

दीर्घ वियोग के पश्चात् श्रीकृष्ण तथा वृन्दावन वासियों का मिलन एक मर्मस्पर्शी घटना थी। इतने वर्षों के पश्चात् भक्त शिरोमणि राधा-रानी तथा गोपियों ने श्रीकृष्ण को देखकर परमानन्द का अनुभव किया; किन्तु कुरुक्षेत्र के वातावरण का श्रीकृष्ण की राजसी वेशभूषा राधा-रानी के प्रेममय भावों में अवरोधक थी। राधा-रानी पूर्व बीते हुए समय की भाँति श्रीकृष्ण के साथ वृन्दावन के कुञ्जों में विहार तथा मिलन के लिए लालायित थीं। इस लालसा के कारण राधा-रानी ने भगवान् श्रीकृष्ण को वृन्दावन आने का निमन्त्रण दिया। परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ने निमन्त्रण स्वीकार किया, तो वृन्दावन वासी प्रसन्नता से झूम उठे। जिस रथ पर भगवान् श्रीकृष्ण एवम् उनके बड़े भाई बलराम तथा मध्य में बहन सुभद्रा देवी आरुढ़ थी, उस रथ के घोड़े उन लोगों ने खोल दिये तथा स्वयं घोड़े की जगह जुत गए। वृन्दावन वासियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को भगवान् जगन्नाथ (जगत्-नाथ) का नाम दिया। आकाश जय जगन्नाथ, जय बलदेव, जय सुभद्रा के उद्घोषों से गूँज उठा। परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—'जब तुम मेरे घोड़े (दास) बन ही गये तो अब तुम मुझे जहाँ चाहो ले चलो। इस प्रकार सब व्रजवासी मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण के रथ को स्वयं खींचकर वृन्दावन धाम तक ले आये तथा परमानन्द को प्राप्त हुये।

जगन्नाथ परम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रामाणिक स्वरूप त्रेता युग के अन्त में पाण्डुवंश के राजा उद्यन के पुत्र इन्द्रद्युम्न महाराज अबन्ती नगरी में राज करते थे। एक रात्रि उन्होंने स्वप्न में नीलगिरि पर्वत पर पूजित भगवान् नीलमाधव के श्रीविग्रह (श्रीमूर्ति) के दर्शन किये। भगवान् नीलमाधव के सौन्दर्य से वह अभिभूत हो गए और जाग जाने पर उन्होंने निश्चय किया, कि वह भगवान् के इस श्रीविग्रह को ढूँढ़कर अपनी राजधानी में प्रतिष्ठित करेंगे। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु उन्होंने योग्य ब्राह्मणों को मूर्ति की खोज में चारों दिशाओं में भेजा, किन्तु सफलता केवल विद्यापति ब्राह्मण को मिली। इस ब्राह्मण के द्वारा सूचित होकर महाराज इन्द्रद्युम्न दल-बल सहित उस स्थान पर पहुँचे तो दैव इच्छावश वह मूर्ति अन्तर्धाण हो गई। राजा निराश होकर लौट आए। एक रात्रि को उन्हें स्वप्न में आदेश मिला—

'तुम्हें समुद्र में बहता हुआ विशाल नीम वृक्ष

का तना मिलेगा उससे तुम भगवान् के श्रीविग्रह का निर्माण कराना। राजा को बताए गए निश्चित समय पर समुद्र में बहता हुआ नीम वृक्ष का तना मिला। सैनिकों ने उस लकड़ी को बाँधकर समुद्र से बाहर निकालने का प्रयास किया; परन्तु सफल नहीं हुए। पश्चात् प्रभु की कृपा से लकड़ी बाहर निकली। राजा ने मूर्ति निर्माण हेतु दक्ष शिल्पियों को बुलवाया और मूर्ति निर्माण में उन्हें योजित किया, किन्तु अथक् परिश्रम के पश्चात् उन सब ने कहा—

'महाराज! यह लकड़ी कैसी रहस्यमयी है। हमारे सभी औज़ार खराब हो गये; परन्तु इसमें एक निशान भी नहीं पड़ा। राजा चिन्तित हुए। श्रीकृष्ण का स्मरण करने पर उनकी प्रेरणा से एक वृद्ध शिल्पी वहाँ दिखाई दिया। राजा की प्रार्थना पर उसने मूर्ति बनाने से पूर्व एक प्रस्ताव रखा—

'राजन्! मैं इस कार्य को एक बन्द कमरे में करूँगा। जहाँ मुझे कोई नहीं देखे। यदि किसी ने मुझे देख लिया तो मेरा कार्य उसी समय बन्द हो जायेगा'। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। १५ दिन बीत जाने पर राजा चिन्तित हुए—'उस शिल्पी ने कुछ खाया-पिया है या नहीं। हाय कहीं वह मर तो नहीं गया'–ऐसा सोचकर राजा ने समय से पूर्व कक्ष का द्वार खोल दिया तो देखा वह शिल्पी अदृश्य हो गया है और तीनों मूर्तियाँ अधूरी बनी हुई हैं। राजा चिन्तित हुए कि 'भगवान् का बिना हाथ-पैर का यह रूप तो प्रमाणिक नहीं है। अत: मन्दिर में इस रूप की स्थापना कैसे की जाएगी। उसी समय नारद जी आकाश मार्ग से उतरे तथा राजा से कहा—

राजन्! आप चिन्तित नहीं हों भगवान् का यह रूप तो प्रमाणिक है। इस रूप को भगवान् ने द्वापर में द्वारिका पुरी में प्रकट किया था। यह भगवान् का प्रेम लीलामय विग्रह है। ये तीनों रूप श्रीकृष्ण, बलराम और उनके मध्य में सुभद्रा देवी के हैं। नारदमुनि की कृपा से राजा को यह ज्ञात हुआ कि वह वृद्ध शिल्पी जिसने मूर्तियों का अधूरा निर्माण किया था, कोई और नहीं बल्कि स्वयं देवलोक के अद्भुत शिल्पी विश्वकर्मा जी थे। राजा इन्द्रद्युम्न ने अत्यन्त प्रसन्नता के साथ जगन्नाथ, बलदेव तथा सुभद्रा का पुरी में विशाल मन्दिर बनवाया। गर्ग-संहिता के अनुसार कलियुग के १५ हजार वर्षों तक भगवान् जगन्नाथ पृथ्वी पर रहेंगे। तब तक कलियुग का प्रभाव पृथ्वी पर नहीं बढ़ेगा।

आज भी जगन्नाथपुरी में जिसको पुरुषोत्तम क्षेत्र तथा शंख क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। भगवान् श्रीजगन्नाथ, बलदेव तथा सुभद्रा को विशाल रथों पर विराजमान करके भव्य रथयात्रा प्रत्येक वर्ष के आषाढ़ मास में बड़ी धूम-धाम से मनाई जाती है। जिसमें देश-विदेश के लाखों नर-नारी श्रीभगवान् के रथों को अपने हाथों से खींचते हैं तथा इस प्रकार भगवान् के परम धाम के अधिकारी बन जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रीकृष्ण भावनामृत संघ के संस्थापक आचार्य श्रीमद् ए०सी० भक्तिवेदान्त स्वामी, प्रभुपाद ने इस रथयात्रा को विश्व के अनेक देशों में आयोजित किया तथा लाखों जीवों को परम भगवान् जगन्नाथ के रथ खींचने का सुअवसर प्रदान किया, जिससे वे मुक्ति-लाभ प्राप्त करते हुए परम भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम को प्राप्त हो सकें।

नीलाद्रौ शङ्खमध्ये शतदलकमले रत्नसिंहासनस्थं-
सर्वालङ्कारयुक्तं नवघनरुधिरं संयुतञ्चाग्रजेन।
भद्राया वामभागे रथचरणयुतं ब्रह्मरुद्रेन्द्रवंद्यं-
वेदानां सारमीशं सुजनपरिवृतं ब्रह्मदारूं स्मरामि।।

अब चलें पुरी की ओर

भारत के पूर्वी समुद्र तट पर बसा पुरी भारत के चार धामों में से एक है। पुरी की प्रसिद्धि का मूल आधार है–भगवान् जगन्नाथ का मन्दिर। अपनी स्थानीय कला एवं धार्मिक महत्ता के कारण यह मन्दिर विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ तक कि जगन्नाथ और पुरी एक-दूसरे के पर्याय बन गये हैं और लोग पुरी को जगन्नाथपुरी ही कहने लगे हैं। पुरी का प्राचीनतम नाम पुरुषोत्तम क्षेत्र और श्रीक्षेत्र भी मिलता है।

जगन्नाथ मन्दिर

इस मन्दिर के रास्ते पर सड़क के दोनों ओर कण्ठी मालाएँ, फूल मालाएँ, प्रसाद, नारियल, चन्दन, दीया-बत्ती आदि पूजा-सामग्री की दुकानें सजी हैं। करीब पाँच-सात मिनट चलने पर सड़क के आखिरी पश्चिम भाग में भव्य कलात्मक एवं ऐतिहासिक जगन्नाथ मन्दिर है।

जगन्नाथ जी का मन्दिर २१४ फीट ऊँचा है। मन्दिर को समुद्री हवाओं के प्रकोप से बचाने के लिए तत्कालीन सम्राटों ने मन्दिर की दीवारों पर रासायनिक पलस्तर कराया था। मन्दिर के ऊपर कटि स्थान पर दक्षिण की कोठरी में कलियुग की प्रतिमा और शिखर पर नील चक्र एवं पताका लगी है। पताका दैनिक सन्ध्या के समय बदल दी जाती है। शैल्पिक दृष्टि से मन्दिर अत्यन्त आकर्षक एवं महत्त्वपूर्ण है। मन्दिर के चार द्वार हैं।

पूरब का सिंह द्वार सबसे सुन्दर है, जिसके दोनों ओर दो सिंह-मूर्तियाँ विद्यमान हैं। सिंह द्वार के सामने काले पत्थर का ३५ फीट ऊँचा १६ फलक वाला सुन्दर गरुड़ स्तम्भ है, जिस पर सूर्य सारथि अरुण की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। मन्दिर के दक्षिण में अश्व द्वार, उत्तर में हाथी द्वार और पश्चिम में बाघ द्वार है। द्वारों का यह नामकरण उनके निकट स्थित जानवरों की मूर्तियों के नाम पर किया गया है। मन्दिर के भीतर पश्चिम की ओर ४ फीट ऊँची और १६ फीट लम्बी रत्नवेदी है। ऊपर की तरफ लम्बा सुदर्शन-चक्र शोभायमान है। इसी के दक्षिण में भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा जी की प्रतिमाएँ हैं। मन्दिर के हाते में लगभग ५१ स्थान और मन्दिर हैं। स्थापत्य कला की दृष्टि से मन्दिर के चार भाग हैं।

पहला भाग भोग मण्डप है, जहाँ भक्तों को महाप्रसाद (सूखा भात) मिलता है। दूसरा भाग नृत्य मण्डप है, जहाँ आरती के समय वाद्य यन्त्रों के मधुर ध्वनि पर भक्तगण आत्म-विभोर होकर नृत्य करते हैं। तीसरा भाग जगमोहन मण्डप कहलाता है, जहाँ दर्शक बैठते हैं। इस मण्डप की दीवारों पर नर-नारी की अनेक कला-कृतियाँ बनी हैं। चौथा भाग मुख मण्डप है। ये चारों मण्डप परस्पर मिले हुए हैं ताकि एक मण्डप से दूसरे मण्डप में आसानी से प्रवेश किया जा सके।

मन्दिर की व्यवस्था में हजारों लोग रहते हैं और मन्दिर को प्रति वर्ष लाखों रुपयों की आय हो जाती है। इस भव्य मन्दिर की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें स्थापित प्रभु जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राजी की मूर्तियाँ पत्थर की नहीं काष्ठ (चन्दन/नीम) की हैं।

समुद्र तट

सुनहरी धूप में चमकता पुरी का समुद्र तट अत्यन्त लुभावना-सा लगता है। यहाँ सूर्योदय और सूर्यास्त के समय लहरों में किरणों की झिल-मिलाहट का अनोखा आनन्द है।

पञ्चम तीर्थ

पुरी में मार्कण्डेय, चन्दन, श्वेतगङ्गा, इन्द्रद्युम्न और पार्वती तालाब पञ्च तीर्थ के नाम से जाने जाते हैं। इन तालाबों के आस-पास प्रकृति की रमणीक हरियाली देखते ही बनती है।

पहले यह कहा गया है कि पुरी अधिक प्रसिद्ध

है जगन्नाथ के मन्दिर के कारण ही। लेकिन यहाँ देखने के लिए अनेक अन्य स्थान भी हैं जैसे– शिल्प कला से समृद्ध अनेक मन्दिर, सदाबहार वन, हरी-हरी पत्तियों और सुगन्धित फूलों से भरे बाग, स्वच्छ जल वाली सुन्दर झीलें और अपनी लहरों से प्रकृति का गीत गाने वाला समुद्र। पुरी से कुछ मील इधर ही साक्षी गोपाल का मन्दिर भी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र है।

पुरी में कहाँ ठहरें

पुरी में दर्शकों (पर्यटकों) के आवास की पर्याप्त व्यवस्था है। यहाँ अनेक वैष्णव आश्रम, होटल और धर्मशालाएँ भी हैं। आश्रमों में जीयर मठ, रिवासा मठ, यमार मठ, बलगंडी का रामचन्द्र स्वामी मठ, रामचन्द्र स्वामी (थानापति स्वामी) का श्रीवैष्णव मठ एवं हुलासगंज द्वारा नवनिर्मित श्री राजेन्द्रसूरी सेवाश्रम विशेष प्रसिद्ध है। पुरी की उल्लेखनीय धर्मशालाएँ हैं—वागला यात्री निवास, गोयनका, खेमका आदि। बस और ग्राण्ट रोड पर धर्मशालाएँ अधिक हैं। थानापति स्वामी का श्रीवैष्णव मठ श्री राजेन्द्रसूरी सेवाश्रम श्रीजगन्नाथ मन्दिर से कुछ दूर पश्चिम लोकनाथ महादेव के समीप दक्षिण दिशा में अवस्थित है। इस आश्रम तक रिक्सा, टमटम एवं गाड़ियाँ चली जाती हैं। आश्रम का प्राकृतिक सौन्दर्य देखते ही बनता है। काजू के पृथ्वी तल तक सटे सघन वृक्षों की हरियाली, पंक्तिबद्ध नारियल एवं झाड वृक्ष तथा तालाब में निर्भय विचरते जलचर जीवों को देखकर दर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है।

रथयात्रा (आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से त्रयोदशी तक)

रथयात्रा पुरी की सर्वश्रेष्ठ यात्रा है। इस अवसर पर श्रीजगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राजी अलग-अलग तीन रथों पर बैठकर गुण्डिचा मन्दिर (जनकपुर) जाते हैं। श्रीजगन्नाथ जी के रथ को नन्दिघोष, बलभद्रजी के रथ को तालध्वज और सुभद्राजी के रथ को देवदलन कहा जाता है। श्रीगुण्डिचा मन्दिर में सात दिन रहने के बाद तीनों मूर्तियाँ फिर रथारूढ़ होकर श्रीमन्दिर लौट आती हैं और मार्ग में तीन दिनों तक विश्राम करती हैं। राजा इन्द्रद्युम्न और उनकी पत्नी गुण्डिचा देवी ने पहले गुण्डिचा मन्दिर में ही श्रीजगन्नाथ जी की स्थापना की थी। बाद में बड़ी धूम-धाम के साथ उन तीनों मूर्तियों को तीन रथों पर बिठाकर वे मुख्य मन्दिर में ले आये और वहाँ उनकी स्थापना की गयी। इसी से रथयात्रा प्रारम्भ हुयी है और यह यात्रा सहस्रों वर्षों से उस पवित्र दिवस की स्मृति में मनायी जा रही है। इस यात्रा के अवसर पर भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी लोग पुरी के प्रधान मार्ग पर बेझिझक तथा विना रोक-टोक श्रीजगन्नाथजी के दर्शन का लाभ उठाकर पवित्र हो जाते हैं। इसलिये इस रथयात्रा का दूसरा नाम 'पतितपावन महोत्सव' भी है।

पतितपावन

श्रीजगन्नाथ जी का अन्य नाम पतितपावन भी है। इसका तात्पर्य यह है कि ये समाज में अस्पृश्य, घृणित और पतित जनों के उद्धारकर्त्ता हैं। इन्हीं पतित जनों के लिये स्वयं जगन्नाथजी पतितपावन नाम धारण कर सिंह दरवाजे के सामने इस प्रकार विराजित हैं कि कोई भी व्यक्ति श्रीमन्दिर के अन्दर न जाकर बाहर से ही उनके दर्शन का लाभ उठा सके। समाज में पतित तथा दूसरे धर्मावलम्बियों के लिये ही यहाँ भगवान् का पतितपावन रूप विराजित है।

किम्बदन्ती है कि मुसलमान शासकों ने मिलकर गजपति राजा द्वितीय रामचन्द्र देव को इस्लाम धर्म ग्रहण करने के लिए बाध्य किया था; परन्तु गजपति आजीवन श्रीजगन्नाथजी के एक परम भक्त तथा सेवक बने रहे। इसलिये मुसलमान शासकों के दबाव से श्रीमन्दिर में प्रवेश न कर केवल पतितपावन जी के दर्शन प्रतिदिन करके उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन किया था।

विष्णुसहस्रनाम के (१०१-१२०) नामों का विशद् भाष्य (हिन्दी में) गताङ्क से आगे

इससे पूर्व अङ्क में श्रीविष्णुसहस्रनाम के १०० नामों का अर्थ दिया गया है १०१वाँ नाम से यहाँ प्रारम्भ किया जा रहा है—

१०१. अच्युतः—च्युङ् गतौ धातुः क्त प्रत्ययः नञ् समासः न च्युतः अच्युतः। यस्मान्नच्युत-पूर्वोऽहमच्युतः तेन कर्मणा। प्रपन्नेभ्यो तेभ्यः नापगतः।

भगवान् आश्रित जनों से च्युत अर्थात् अलग कभी नहीं होते अत एव वे अच्युत हैं। **'तस्याहं न प्रणश्यामि' 'न त्यजेयं कथञ्चन'** (वा०रा० ६.१८३)।

१०२. वृषाकपिः—वृषः धर्मः तद्रुपश्चासौ कपिः वृषाकपिः। पूर्व पदस्य दीर्घः श्रेष्ठधर्मः।

कपिवराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्चवृष उच्यते।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह काश्यपो मां प्रजापतिः ।।

'कृष्णः धर्म सनातनः' 'रामो विग्रहवान् धर्मः'। वृष का अर्थ है–धर्म और कपि का अर्थ श्रेष्ठ या वराह। भगवान् श्रेष्ठ धर्म हैं।

१०३. अमेयात्माः—अमेयः माङ्धातोः यत् प्रत्ययः मेय नञ् समास अमेय आत्मा अस्य। अस्मिन् = आश्रितानुग्रहस्तोतसि अमेयः इयान् इत्यपरिच्छेद्यः आत्मा स्वरूपमस्य अमेयात्मा।

भगवान् अपरिमेय हैं अर्थात् परिमित नहीं हैं। इसी कारण से अमेयात्मा उनकी संज्ञा है।

१०४. सर्वयोगविनिःसृतः—सर्वयोगैः उपायैः विनिसृतः = प्राप्तुं योग्यः सुग्रहोवा भवति। युजिर् योगे धातु घञ् योग विनिपूर्वक गत्यर्थक सृधातु क्त प्रत्ययः।

समस्त योगों के द्वारा उन्हीं की प्राप्ति होती है। अतः सर्वयोग विनिसृतः उनका नाम है। **'सर्वैरुपायैः प्राप्यश्च सर्वयोगविनिःसृतः'**।

वसुर्वसुमनाः सत्य समात्मा संमितः समः।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः।।
(श्लो० १२)

१०५. वसुः—वसति इति वसुः। निवासार्थक वसधातुः उ प्रत्ययः तेषु भक्तेषु अति प्रीत्या वसति इति वसुः।

धननिधि में मन दिये हुए के समान भगवान् भक्तों में बसते हैं। अतः वसु इनकी संज्ञा है।

१०६. वसुमनाः—वसुनि निधाविव मनोऽस्य मनधातुः असुन् प्रत्ययः दीर्घादि।

भगवान् भक्तों को अपनी निधि मानते हैं उसे सदैव सुरक्षित रखते हैं।

१०७. सत्यः—सत्सु साधुः सत्यः सत् शब्दात् यत् प्रत्ययः।

भगवान् भक्तों के लिये साधु हैं, सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

१०८. समात्मा—समः आत्मा = मनः अस्य। भक्तेषु गुणैः तारतम्येऽपि अनालोचित विशेषः आत्मा = मनः अस्य।

भगवान् भक्तों के तारतम्य में ध्यान नहीं देते। सबों के प्रति समान भाव रखते हैं। 'समोऽहं सर्वभूतेषुः'।

१०९. सम्मितः—सम् पूर्वकमाङ्धातोः क्त प्रत्ययः इत्वे सम्मितः = परिमितः अस्मत् करस्थ इति परिछिन्न इति।

भक्त जनों को वे उनके द्वारा हृदयङ्गम हो सकने वाले सीमित रूप में प्राप्त होते हैं।

११०. समः—समत्वात् समः ज्ञाते अपरिचिते चापि समत्वात् समः। षम् धातुः औणादिक् अकार प्रत्ययः।

भक्तजनों के चिन्तन को मन्द या तीव्र होने में भगवान् अन्तर नहीं मानते। वे सभी भक्तजनों को समान भाव से सम्मान देते हैं। 'समोऽहं सर्व भूतेषु'।

१११. अमोघः—तेषां मोघः = वितथ स्पर्शः न इति अमोघः। अनिष्फलः।

भगवान् अमोघ हैं उनका दर्शन, उनका स्तवन सब कुछ अमोघ होता है। उनके दर्शन स्तवन से भक्तगण अमोघ पद प्राप्त कर लेते हैं।

अमोघ दर्शनं राम न च मोघस्तव स्तवः।
अमोघास्तेभविष्यन्तिभक्तिमन्तश्च ये नराः।।

(वा०रा० ६.१२०)

११२. पुण्डरीकाक्षः—पुण्डरीकं परं धाम नित्यमक्षरमव्ययम्। तद्गतानामक्षिभूतः इति पुण्डरीकाक्षः।

पुण्डरीक परमधाम वैकुण्ठ को कहते हैं। वहाँ के रहने वालों के लिये भगवान् नेत्र स्वरूप हैं। अतः पुण्डरीकाक्ष उनकी संज्ञा है। 'दिवीवचक्षुराततम्'।

११३. वृषकर्माः—वृषः धर्म श्रेयस्करकरंकर्म अस्य।

श्रेयस्कर धर्म मय कर्म जिसका है उसे वृषकर्मा कहते हैं।

११४. वृषाकृतिः—वृषः धर्म आकृति आ + पूर्वक कृ क्तिन धर्मरूपा आकृतिः यस्यासौ वृषाकृतिः।

तापत्रयाग्निदग्धानां सुधेवात्यन्त शीतलम्।
रूपं कर्म च यस्यास्ति वृषकर्मा वृषाकृतिः।।

वृष का अर्थ शीतल भी होता है। भगवान् की शीतल आकृति त्रिविधताप से तपते हुए प्राणियों को शीतलता प्रदान करती है।

रुद्रो बहुशिरावभ्रुर्विश्वयोनि शुचिश्रवाः।
अमृतः शाश्वतः स्थाणुर्वरारोहो महातपाः।।

(श्लोक १३)

११५. रुद्रः—रोदयति इति रुद्रः। अश्रुविमोचनार्थक रुदिर धातुः 'रोदेर्णिलुक्च' इति प्रत्ययः।

ईद्रक रूपैश्चेष्टितैश्च भक्तानानन्दवाष्पयन्।
रोदयन् रुद्र उद्दिष्ट सर्व सन्तोषदो मनुः।।

भगवान् के धर्ममय कर्म तथा धर्ममयी शीतल आकृति के प्रभाव से भक्तजनों के आनन्दाश्रु निकलने लगते हैं। इस प्रकार आनन्दाश्रु से रुलाने के कारण भगवान् रुद्र कहलाते हैं।

११६. बहुशिराः—बहुनि परस्सहस्राणि शिरांसि अस्य 'सहस्र शीर्षापुरुषः'।

विराट् रूप में उनके अनन्त मस्तक हैं। अनन्त शेष के रूप में अनेकानेक फण दिखायी देते हैं। अतः बहुशिरा नाम से उनके अनन्त शेष रूप का भी सङ्केत मिलता है। अतः बहुशिरा उनकी संज्ञा है।

११७. वभ्रुः—विभर्ति इति वभ्रुः भृञ् धातुः कु प्रत्ययः द्वित्वंच 'यस्य सा सकला पृथिवी फणामणि शिलारुणा विभर्तिमाला लोकानाम'।

ब्रभ्रु का अर्थ हुआ धारण करने वाला। भगवान् सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं। अनन्त (शेष के रूप में) वे पृथिवी को धारण करते हैं।

११८. विश्वयोनिः—विश्वेषां योनिः मिश्रयिता युमिश्रणामिश्रणे धातुः नित् प्रत्यय गुणेः विश्वेषां भेजुषां भक्तानां स्वेन मिश्रयति।

विश्व के भक्तों को अपने से सम्पर्क करा देते हैं। अतः विश्वयोनि यह उनकी संज्ञा हुई। जो सम्पूर्ण जगत् को धारण करता है उसे सम्पूर्ण जगत् से सम्बन्ध होना स्वाभाविक हो जाता है। फिर भक्तजनों से सम्बन्ध रहता ही है। इसी तथ्य का सङ्केत करने के लिये विश्वयोनि नाम यहाँ आया है। विश्वयोनि का साधारण अर्थ विश्व का कारण होता है, किन्तु आगे चलकर इसी अर्थ में विश्वयोनि नाम आया है। यहाँ भक्तलोगों का प्रसङ्ग चल रहा है, अतः इस नाम से यही प्रकट होता है कि वे समस्त

भक्तजनों से संयोग रखने वाले हैं।

११९. शुचिश्रवाः—शुचीनि श्रावणीयानि यः शृणोति शुच् शौचकर्माश्चायम् इन प्रत्ययः शुचिः श्रु श्रवणार्थकधातुः असुन् प्रत्ययः गुणादि।

भगवान् भक्तजनों को पवित्रवाणी सुनाते हैं—

शुचीनि श्रावणीयानि शृणोमीहधनञ्जय।
न च पापानि गृह्णामि ततोऽहं वै शुचिश्रवः।।

मैं अमाङ्गलिकभावों को ग्रहण नहीं करता हूँ इसीलिये शुचिश्रवा मेरा नाम है। भक्त्युपहृतं हि शुचि :। विदुरान्नानि शुचीनि गुणंवन्ति च।

धर्म्यारम्याश्चार्थवती विचित्रार्थ पदाक्षरा।
शृण्वतोः विविधावाचो विदुरस्य महात्मनः।
अकामस्यैव कृष्णस्य सा व्यतीयाय शर्वरी।

भगवान् कृष्ण ने विदुर का पवित्रान्न खाया और उनके द्वारा पवित्र वाणी (कथा) सुनते रातभर व्यतीत किया।

१२०. अमृतः—न म्रियते अनेन मृङ् प्राण त्यागे धातुः क्त प्रत्ययः नञ् समास अमृतः।

भगवान् अपने माधुर्य के द्वारा जरा एवं मृत्यु का निवारण करते हैं, इससे वे अमृत हैं। उनमें इतना माधुर्य है कि उनकी सेवा से कोई तृप्त नहीं होता। उनसे किसी को मृत्यु नहीं मिलती, अमरत्व मिलता है इसीलिए उनकी संज्ञा अमृत है।

प्रसाद की महिमा

जगन्नाथपुरी में अमृत के समान स्वादिष्ट एवं सुपक्व अन्न को सबके स्वामी भगवान् नारायण भोजन करते हैं। उनके प्रसाद का उपभोग सब पापों का क्षय करने वाला है। भगवान् जगन्नाथजी के मन्दिर में पहुँचकर भगवान् को भोग लग जाने पर जैसे भगवान् विष्णु नित्य शुद्ध हैं, वैसे ही उनका प्रसाद भी शुद्ध है। व्रत-परायण विधवा स्त्रियाँ, वर्णाश्रम-धर्म में तत्पर रहने वाले पुरुष, यज्ञ में दीक्षित पुरुष तथा अग्निहोत्री भी भगवान् जगन्नाथ के प्रसाद को खाकर पवित्र होते हैं। दरिद्र, कृषक, गृहस्थ, प्रभु, स्वदेशी, परदेशी जो भी आते हैं, उन्हें चाहिये कि वे कोई भी भगवान् विष्णु का प्रसाद ग्रहण करने में अहङ्कार न दिखावें। भक्ति से, लोभ से, कौतूहल से अथवा क्षुधाशान्ति के निमित्त आकण्ठ भोजन किया हुआ भगवत्प्रसाद सब पापों को पवित्र कर देता है। जो पण्डितमानी मूर्ख अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु के उस अमृतमय प्रसाद की निन्दा करते हैं, उनकी निश्चय ही दुर्गति होती है। मैं जगन्नाथ जी के प्रसाद का भोजन करके कुछ खाऊँगा, इस प्रकार सच्ची प्रतिज्ञा करके जो प्रतिदिन प्रसाद ग्रहण करता है, वह मनुष्य सब पापों से मुक्त एवं शुद्धचित्त होकर विशुद्ध वैकुण्ठधाम को जाता है। भगवान् का प्रसाद यदि चिरकाल का रखा हो, सूख गया हो अथवा दूर देश में लाया गया हो, जिस किसी प्रकार भी उसका उपयोग करने पर वह सब पापों का नाश करने वाला है। जगन्नाथजी के प्रसाद का अन्न और गङ्गाजल दोनों बराबर हैं। उनको भोजन करने से सब पापों का नाश हो जाता है। वहाँ काष्ठरूपी परब्रह्म सबके नेत्रों के समक्ष प्रकाशित हैं। थोड़े पुण्य वाले मनुष्यों का उस प्रसाद में विश्वास नहीं होता, उसकी महिमा को कोई नहीं जानता।

कालसर्प दोष के ताण्डव की सत्यता

सकल ज्ञानराशि स्वरूप वेद के छः अङ्ग हैं– शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द एवं ज्योतिष। इसमें व्याकरण को मुख तथा ज्योतिष को नेत्र माना गया है। नेत्र प्रत्यक्षीकरण कराता है, अत एव ज्योतिष को प्रत्यक्ष शास्त्र माना गया। सूत्ररूप में वर्णित वेद के मन्त्रों को ऋषियों ने अपने तपो-जन्यज्ञान से साक्षात्कार किया अर्थात् उन मन्त्रों के रहस्यों का परिज्ञान कर जनहित में प्रकाशित किया, इसी से मन्त्रों के साथ उन-उन ऋषियों के नाम सम्बद्ध हो गए। अत एव परम्परागत ज्ञानानुसार सकल भारतीय वाङ्मय में ऋषिवचन ही मान्य होते हैं, जिसे हम आर्षवचन अथवा आर्षग्रन्थ से सम्बोधित करते हैं।

मनुष्य के भविष्य को प्रत्यक्ष कराने वाला ज्योतिष शास्त्र भी इसका अपवाद नहीं है। जन्म से मृत्युपर्यन्त तक घटने वाली घटनाओं को दर्शाने वाला अनेक ज्योतिषीय आर्षग्रन्थ हैं, जिसके अनुसार जम्नकालिक समय को आधार बनाकर जन्मकुण्डली का निर्माण किया जाता है। ईश्वरीय विधान के अनुसार दिन, तिथि, मास, पक्ष, नक्षत्र, योग, करण एवं ग्रहों का प्रभाव मानवीय जीवन को पूर्णरूप से प्रभावित करता है। इन सभी के समवेत स्वरूप को कुण्डली कहते हैं।

कुण्डली में १२ राशियों के लिए १२ भाव होते हैं, जिसमें नवों ग्रहों की विद्यमानता के अनुसार मानव पर पड़ने वाले फल को योग कहा गया है। त्रिकालद्रष्टा ऋषियों ने अपने अलौकिक ज्ञान के द्वारा जगत् में घटने वाली सभी घटनाओं को, जिससे प्राणी को प्रभावित होने की सम्भावना रहती है, उसको अपने ग्रन्थों में दर्शा दिया है; किन्तु किसी भी आर्षग्रन्थ अर्थात् ज्योतिष के किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इस प्रकार के कालसर्प योग की चर्चा नहीं है। इस पर सभी प्राचीन पण्डितों की राय एकमत है।

आर्ष ऋषियों ने ग्रहों के दो स्वरूप निर्धारित किए हैं–शुभग्रह, पापग्रह। चन्द्र, बुध, गुरु एवं शुक्र शुभग्रह तथा राहु-केतु (छायाग्रह) मङ्गल, शनि एवं आंशिक सूर्य को क्रूरग्रह कहा गया है। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि कोई भी ग्रह स्वतन्त्ररूप से सर्वतोभावेन मानव को प्रभावित नहीं करता है। संसार के समस्त चराचर वस्तुओं का प्रभाव मानव के ऊपर किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही पड़ता है। यही कारण है कि मानव द्वारा सभी वस्तुएँ यथावसर पूजित होती हैं। त्रिकालद्रष्टा ऋषियों ने इन सभी पक्षों पर गहन चिन्तन-मनन कर छोटे से छोटे तथा बड़े-से बड़े अनिष्टकारक तत्त्वों पर चिन्तन कर उन्हें अपने आर्ष (ज्योतिष के प्राचीन) ग्रन्थों में परिगणित कर दर्शा दिया है; परन्तु विगत कुछ वर्षों से आधुनिक (नूतन) दैवज्ञों ने आर्ष वचनों के प्रसङ्ग विपरीत भाव प्रदर्शित कर 'कालसर्प' योगरूपी भयानकता से समाज को भयाक्रान्त कर दिया है। वस्तुतः कालसर्प योग है क्या? इसके कितने दुस्परिणाम हैं? इसका निवारण क्या है? आदि पर विचार करें।

कालसर्प योग क्या है?

१. छाया ग्रह राहु एवं केतु के मध्य सभी ग्रहों की उपस्थिति को 'कालसर्प' योग नाम दिया गया है।

२. इसका मुख्य दो स्वरूप है—उदित एवं अनुदित कालसर्प योग। पुनः नवग्रहों तथा बारह-राशियों के विद्यमानता के अनुसार ३४५६ (तीन हजार चार सौ छप्पन) प्रकार के तथाकथित

कालसर्प योग की स्थिति बनती है।

कालसर्प योग के दुस्परिणाम

१. अशान्त चित्त रहना,

२. धन व्यय

३. उन्नति में बाधा

४. अकाल मृत्यु

५. राजभय (जेलयात्रा)

६. सन्तान प्राप्ति में बाधा

७. प्रतिष्ठा नाश

८. विद्यानाश

९. रोजगार नाश अदि।

अर्थात् संसार के समस्त दु:ख को देने वाला तथाकथित कालसर्प दोष को कहा जा रहा है।

कालसर्प योग की सच्चाई

१. यह आर्ष ऋषियों से अनुमोदित नहीं होने के कारण आदरणीय नहीं है।

२. क्या छायाग्रह (राहु-केतु) ही सबों से बलवान् है?

३. क्या सभी शुभग्रह चाहे वे अपने घर में हों अथवा मित्र के घर में, ऊँच स्थान में हों या अन्य शुभदायक योग से युक्त ही क्यों न हों राहु-केतु से प्रभावहीन हो जाते हैं?

४. क्या राहु-केतु सभी से ऊपर ब्रह्म की सत्ता प्राप्त कर लेता है?

५. इस योग से जितनी भी अनिष्ट की आशङ्का व्यक्त की गई है, उससे आगे संसार में कुछ और अमङ्गल शेष है क्या?

६. लोक-कल्याण के लिए जीवन जीने वाले अन्त:करुणाप्रवण ऋषियों की क्या बुद्धि मारी गयी थी? जो छोटे-छोटे अनिष्टों को तो गिना दिया; परन्तु सबसे बड़े अनिष्ठ कारक कालसर्प योग को नहीं दर्शाया?

उपर्युक्त के अतिरिक्त तथाकथित धन-लोलुप ज्योतिषियों ने कालसर्प योग को अत्यन्त भयानक बताकर निराकरण का जो मार्ग बतला रहे हैं, वह अपने आप में एक महाकाल सर्पयोग की स्थिति उत्पन्न करता है। कालसर्प योग से मुक्ति हेतु अर्थात् उसकी शान्ति हेतु यह कहा जा रहा है कि चूँकि सर्प को शिवजी अपने मस्तक पर भूषण स्वरूप धारण करते हैं, अत: वही इस भयानक योग से मुक्ति दिला सकते हैं। अत एव आपको स्वर्ण के नागदान करते हुए, नासिक, उज्जैन आदि विशेष शिव मन्दिरों में महामृत्युञ्जय का जप, रुद्राभिषेक-पूर्वक शिवाराधन करना अनिवार्य है।

यद्यपि ऊपर यह कहा जा चुका है कि कालसर्प योग ऋषि वचनों से अनुमोदित नहीं होने के कारण आदरणीय नहीं है, फिर भी यदि इसे स्वीकार भी लिया जाय तो भी यह भयावह कथमपि नहीं है। जिस प्रकार अन्यान्य क्रूरग्रहों की स्थिति विशेष से प्राणी सन्तप्त होता है, उसी प्रकार इस योग से भी सन्तप्त होगा। यहाँ विशेष ध्यातव्य है कि देश के अनेक हस्तियाँ ऐसी हुई हैं, जिनकी कुण्डली में तथाकथित कालसर्प योग रहा है; परन्तु उन्हें किसी भी प्रकार से विशेष सन्ताप नहीं हुआ, बल्कि राजयोगस्वरूप देश की सत्ता पर सुदीर्घ काल तक वे विराजमान रहे। काशी से प्रकाशित विश्वपञ्चाङ्ग के सुदीर्घ काल तक सम्पादन करने वाले तथा वर्तमान समय में हृषीकेश पञ्चाङ्ग के सम्पादक प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित शिरोमणि हीरालाल मिश्र जी ने बतलाया कि मैंने पं० जवाहर लाल नेहरू, पं० कमलापति तिपाठी, पं० लोकपति त्रिपाठी, श्रीवरुण गाँधी आदि अनेक हस्तियों के कुण्डली निर्माण किया है तथा देखा है, ये सभी हस्तियाँ तथाकथित कालसर्प दोष से ग्रसित थे और राजसत्ता का सन्तापरहित होकर आजन्म उपभोग किए हैं।

सामान्यरूप से परेशानी तो अनेक कारणों से होती ही रहती है। वर्तमान भागदौड़ के जीवन में हर आदमी २४ घंटे के अन्दर ही अनेक प्रकार के उतार-चढाव को देखता है। तो क्या इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि यह कालसर्प दोष का ही प्रभाव है?

कालसर्प योग की शान्ति का सर्वोत्तम उपाय

सभी प्रकार के कर्मों में सभी विद्वानों द्वारा एक मन्त्र बोला जाता है—

तदेवलग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽघ्रियुगं स्मरामि।।

अर्थात् जहाँ पर भगवान् श्रीहरि का स्मरण होता है, वहाँ पर, लग्न, ग्रह, देवता, विद्या आदि सभी बलवान स्वरूप को प्रदान करते हैं अर्थात् अमङ्गलकारक होते हुए भी हरिस्मरण से मङ्गल कारक हो जाते हैं। फिर उन पण्डितों को यह कैसे विस्मृत हो जाता है कि हरिस्मरण अर्थात् हरि आराधना से कालसर्प दोष दूर नहीं होगा? इसके अतिरिक्त उनके द्वारा जो यह तर्क दिया जाता है कि सर्प को अपने मस्तक पर शिवजी भूषणस्वरूप धारण करते हैं, अत: वे ही एकमात्र शान्ति प्रदान कर सकते हैं, कितना औचित्य युक्त है? भगवान् विष्णु के शय्या बनकर नित्य चरणों की सेवा में सहस्त्रफण धारी शेषनाग संलग्न रहते हैं, तो भला आप ही विचार करें कि क्या मस्तक पर धारण करने वाले शिवजी से अपने पैरों के नीचे रखने वाले भगवान् विष्णु से सर्पराज कम प्रभावित होंगे या ज्यादा?

भगवान् नारायण के नित्य सेवक के रूप में शेष जी भी हैं। यही कारण है कि जब-जब भगवान् का अवतार इस धराधाम पर होता है, तब-तब श्रीशेष जी उनकी सेवा में सदैव साथ रहते हैं। त्रेतायुग अर्थात् रामावतार में शेषजी स्वयं लक्ष्मण के रूप में भगवान् की सेवा में उपस्थित रहे हैं और प्रभु के भक्तों को सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त किए हैं। देवताओं के वरदान के कारण सामान्यतया अवध्य स्वरूप धारण किए हुए जगत् संतापी मेघनाद को मारने के लिए चौदह वर्षों तक कठोर तप लक्ष्मण जी ने प्रभु के भक्तों के सन्ताप को दूर करने के लिए ही किया था।

द्वापर युग में जब भगवान् लीला बिहारी (श्रीकृष्ण) के स्वरूप में अवतरित हुए तब रामावतार के सेवा से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उन्हें अपना अग्रज बनने का सौभाग्य प्रदान किया था। वही शेषजी के वंशज श्रीप्रभु के भक्तों को कष्ट दे सकते हैं अथवा कष्ट पहुँचाने की उनमें शक्ति है? क्योंकि जो जिसका दास है, वह अपने स्वामी के भक्तों को कैसे सन्तप्त कर सकता है? प्रारब्धवशात् कालिय नाग अपने यमुनावास के क्रम में स्वभावजन्य दोष के कारण जब प्राणियों को सन्ताप देने लगा, तब बालस्वरूप श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में ही उसका गर्व भञ्जन करते हुए नाथ दिया था, जिससे उसे प्रारब्ध जन्य दोष से मुक्ति हुयी थी। आज भी नाग के शीश पर भगवान् के चरण के चिह्न स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। सत्य तो यह है कि विभिन्न प्रकार के सर्पों में भयानक नाग (अत्यधिक विषैला) के रूप में भगवान् के चरण के चिह्न से ही पहचाना जाता है। क्या धन लोलुप वे पण्डित इस बात को विस्मृत कर गये हैं, जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को विराट स्वरूप दिखलाया था, तब भोले बाबा उसमें कहाँ थे और उनकी स्थिति कैसी थी? जब श्रुति कहती है कि परब्रह्म वे ही अर्थात् श्रीनारायण ही हैं और उन्हीं से सभी देवतादि प्रकाश प्राप्त कर प्रकाशित होते हैं, तब फिर ऐसा भ्रमजाल फैलाना मानवता के साथ क्रूर खिलवाड़ नहीं तो और क्या है? एक तरफ आप जनता को कालसर्प की भयानकता से मुक्त कराना चाहते हैं और दूसरी तरफ हरि

स्मरण के अनेकविध सरल मार्ग के होते हुए भी धनापहरण की कामना से खर्च, भयरूपी महाकाल सर्प दोष उस पर थोप रहे हैं।

श्रुति पुराण सभी श्रीहरि की महिमा बखान करते हुए कहते हैं—

शुभग्रहाः भूतपिशाचयुक्ता ब्रह्मादयोदेवगणाः प्रसन्नाः ।
लक्ष्मीस्थिरातिष्ठति मन्दिरे च गोविन्दभक्तिं वहतां नराणाम् ।।

यहाँ एक बात और स्पष्ट करना उचित प्रतीत हो रहा है कि जब सभी प्रकार के कष्टों अर्थात् संसार चक्र के आवागमन से भी मुक्ति प्रदान करने वाले प्रभु श्रीनारायण को ही एकमात्र उपाय सभी सद्ग्रन्थों ने बतलाया है, तब उनकी आराधना से क्षुद्रयोग से मुक्ति प्राप्त करने में क्या बाधा होगी? अर्थात् कुछ नहीं। यहाँ एक प्रसङ्ग उद्धृत करना समीचीन होगा। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक पं० मदन मोहन मालवीय जी के पुत्र अत्यधिक विमार थे। जीवन की आशा उन्हें नहीं रही थी। तब वे विह्वल होकर तार द्वारा अपने पिता मालवीय जी को अपनी स्थिति से अवगत कराया। मालवीय जी ने लौटती डाक से तार द्वारा संदेश दिया कि गजेन्द्रमोक्ष रूपी महास्त्र तुम्हें मैंने पूर्व में ही दे दिया हूँ, तब तुम क्यों विचलित अथवा भयभीत होते हो।

(श्रीमद्भ०महापु० की भूमिका से उद्धृत)

अतः उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि कालसर्प योग की भयानकता से विह्वल होने की आवश्यकता नहीं है। तथाकथित यह योग जितना अनिष्टकारक है, उतना ही राजयोगादि को देने वाला है, फिर भी आत्मतुष्टी के लिए सर्वोत्तम शान्ति रूप उपाप भगवान् श्रीहरि का स्मरणपूर्वक उनका विविध प्रकार से पूजन ही है। यथा—

१. विष्णुसहस्रनाम का सम्पुट पाठ करना या कराना।
२. कुशल वैष्णव पण्डित से नृसिंह मन्त्र का जाप कराना तथा नृसिंह यन्त्र का धारण करना।
३. 'शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं' आदि मन्त्र का जाप करना अथवा कराना।
४. यदि जातक वैष्णवी दीक्षा से युक्त हो तो मूल-मन्त्र का जाप उसके लिए सर्वोत्तम उपाय है।

अतः आप सभी से अनुरोध है कि भयरहित होकर भगवान् श्रीहरि के चरणों में निष्ठापूर्वक आराधना करें और धनलोलुप पण्डितों के धनापहरण रूपी महाकाल सर्पयोग से स्वयं को मुक्त रखते हुए निर्भय रहें।

।। श्रीकृष्णार्पणमऽस्तु ।।

किस दिशा में विवाह सम्भव है

(१) शुक्र से सप्तमेश की जो दिशा हो उसी दिशा में प्रायः कन्या का घर होता है।

(२) यदि सप्तम स्थान में ग्रह हों तो उस स्थान की राशि की जो दिशा हो अथवा सप्तम स्थान पर जिन ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो उन ग्रहों की राशिस्थ दिशाओं में कन्या का घर होता है, यदि स्थिर राशि हो तो कन्या का घर वर के घर से विशेष दूर नहीं होगा और यदि चर राशि हो तो वर के घर से कन्या का घर दूर होगा।

श्रीरामानुजाचार्य जी का जीवन-वृत्त एवम् उनका दार्शनिक विचार

मद्रास से चौदह कोस दक्षिण-पश्चिम के कोण पर महाभूतपुरी नाम से प्रसिद्ध एक नगर है। जहाँ हारीत गौत्रीय श्री केशवाचार्य नाम के एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नी का नाम कान्तिमती था।

पार्थसारथि भगवान् की आराधना से कान्तिमती के गर्भ से १०१७ खृष्टाब्द के पिङ्गल सम्वत्सर वैशाख मास शुक्ल पक्ष पंचमी तिथि वृहस्पतिवार कर्क लग्न में एक बालक का जन्म हुआ, जिनका नाम ज्योतिषियों ने रामानुज रखा। वैकुण्ठनाथ के शय्या स्वरूप श्रीशेषजी प्रथम बार द्वापर में श्रीबलदेवरूप में आये थे। वे ही कलियुग में श्रीरामानुज के रूप में प्रकट हुए।

प्रथमोऽनन्तरूपश्च द्वितीयोलक्ष्मणस्तथा ।
तृतीयोबलरामश्च कलो रामानुजो मुनिः ।।
द्वापरान्ते कलेरादौ पाखण्डप्रचूरेजने ।
रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्तकः ।।

(वृ०ब्र०सं०)

श्रीकेशवाचार्य ने उन्हें विधिपूर्वक सभी जात-कर्मादिसंस्कार कराया। जैसे श्रीलक्ष्मण जी का बाल्यकाल से ही श्रीराम के चरणों में निर्मल प्रेम था वैसे ही शेषावतार श्रीरामानुजाचार्य जी का भी बाल्यकाल से ही भगवान् एवं भागवतों में पूर्ण निष्ठा थी। श्रीकेशवाचर्य ने सोलह वर्ष की अवस्था में उन्हें विवाह कर दिया। कुछ ही काल के बाद श्रीकेशवाचार्य जी का शरीर शान्त हो गया।

ब्रह्म, जीव और माया के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान वेदान्तशास्त्र से प्राप्त होता है। श्रीरामानुजाचार्य शेषावतार होने के कारण सभी ज्ञान से परीपूर्ण थे फिर भी लोक शिक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मण की तरह वे भी वेदान्त अध्ययन के लिए श्रीकाञ्ची आये और वहाँ श्री यादवप्रकाश से वेदान्त पढ़ने लगे। श्रीयादवप्रकाश श्रीरामानुजजी को मेधावी छात्र समझकर उनसे बहुत प्रेम करते थे। वे कट्टर अद्वैतवादी थे। एक दिन श्रीयादवप्रकाश ने अपने प्रियतमशिष्य श्रीरामानुज को तेल लगाने के लिए कहा। श्रीरामानुज जी यादवप्रकाश को तेल लगाने लगे। उसी समय एक छात्र पढ़ने के लिए आया। श्रीयादवप्रकाश उस छात्र को छान्दोग्योपनिषद पढ़ाने लगे। उस उपनिषद् के ''तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी'' इस मन्त्र में कप्यासं शब्द आया है। यादवप्रकाश ने जिसका अर्थ वानर के अपान भाग किया। उन्होंने पूरे मन्त्र का अर्थ बताया कि उस सुवर्ण वर्ण के समान पुरुष की दोनों आँखें वानर के अपान भाग के समान है, यह व्याख्या सुनकर तेल लगाते हुए श्रीरामानुज की आँखों से अश्रु धारा गिरने लगी। अश्रु का वह गरम जल यादवप्रकाश के पैर पर गिरा। उस गरम जल से यादव प्रकाश को अनुभव हुआ कि श्रीरामानुज की आँखों से निकला हुआ जल मेरे पैर पर गिरा है। अतः उसने श्रीरामानुजजी से पूछा कि तुम्हारे आँखों से अश्रु क्यों गिर रहा है?

श्रीरामानुजजी ने उत्तर दिया कि आपने ''कप्यासं'' का अर्थ वानर के अपान भाग करके भगवान् के नेत्रों को उससे उपमानित किया। इससे मैं बड़ा मर्माहत हुआ हूँ। क्योंकि सच्चिदानन्दमय भगवान् की आँखों को वानर के अपान भाग से उपमानित करना महान अन्याय है। यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज से कहा कि तुम इससे भिन्न तथा सुन्दर अर्थ कर सकते हो, तब स्वामी रामानुजाचार्य जी ने कहा कि आपके आशीर्वाद हो तो मैं करुँ! यादवप्रकाश की अनुमति मिल गयी। श्रीरामानुज स्वामी ने 'कप्यासम्' का अर्थ किया कि क=जल, उसको पीने पाला सूर्य, अर्थात् जो अपने किरणों

द्वारा जल को पीता है, उस सूर्य से विकसित होने वाला कमल कप्यास का अर्थ है। अत: पूरा मन्त्र का अर्थ हुआ कि उस सुवर्णवर्ण पुरुष की आँखे सूर्य से विकसित होने वाला कमल के समान सुशोभित हैं।

यादवप्रकाश ने श्रीरामानुज जी के अर्थ से प्रसन्नता प्रकट नहीं की। उस दिन से उन पर यादव-प्रकाश का प्रेम कम गया। पुन: एक दिन तैत्तीरीयोपनिषद् के ''सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'' इस मंत्र को जब यादवप्रकाश ने ब्रह्म को असत्यव्यावृत, ज्ञानव्यावृत्त और परिच्छिन्नव्यावृत्त कहकर व्याख्या की तब श्रीरामानुजजी यादवप्रकाश का प्रतिवाद करने के लिए उद्यत हुए और उन्होंने कहा कि ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है। अर्थात् सत्यत्व, ज्ञानत्व और अनन्तत्व ये सब भगवान् के गुण हैं।

श्रीरामानुजाचर्य की इस व्याख्या से यादवप्रकाश को विशेष भय हो गया कि यह अद्वैतमत का खण्डन कर द्वैतमत को स्थापित करेगा। अत: यादवप्रकाश ने श्रीरामानुजाचार्य को द्वेष दृष्टि से देखते हुए, उन्हें मरवाने का षड्यन्त्र रचा। एतदर्थ श्रीरामानुजाचार्य को ऐसी जगह ले गया, जहाँ उन्हें बचना सम्भव नहीं था; परन्तु भक्त की रक्षा भगवान् करते हैं इसलिए भगवान् वरदराज श्रीलक्ष्मी के साथ व्याध दम्पति का रूप धारण कर श्रीरामानुजाचार्य को बचा लिए। वे भगवत्कृपा से सकुशल काञ्चीपुरी में लौट गये। उस दिन से श्रीरामानुज जी को श्रीवरदराज भगवान् की सेवा में विशेष निष्ठा हो गयी। श्रीरामानुजाचार्य अपने घर पर ही अध्ययन करने लगे। उन्होंने यादवप्रकाश के द्वारा हत्या के लिए किये गये षडयन्त्र की किसी से चर्चा नहीं की। यादवप्रकाश श्रीरामानुज की नम्रता और सुशीलता को देखकर मन ही मन लज्जित हुए और उन्होंने उससे कहा कि आज से तुम हमारे यहाँ पढ़ा करो। अत: श्रीरामानुजाचार्य पुन: यादवप्रकाश के यहाँ जाकर पढ़ने लगे।

राजकुमारी को प्रेतत्व निवृत्ति

यादवप्रकाश भूत-प्रेत ग्रस्त मनुष्यों को मन्त्र बल से स्वस्थ कर दिया करते थे। उनकी यह प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल गई थी।

एक समय श्रीकाञ्चीपुर की राजकुमारी भूत से पीड़ित हुई। चारों ओर से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्त्र शास्त्री निमन्त्रित किये जाने लगे; परन्तु कोई भी राजकुमारी को निरोग न कर सका। अनन्तर वेदान्ताचार्य यादवप्रकाश बुलाये गये। भूत-ग्रस्त राजकुमारी यावदप्रकाश को देखते ही बड़े जोर से हँसी और बोली कि 'तुम्हारे मन्त्र-तन्त्र से यहाँ कोई फल होने वाला नहीं है। तुम क्यों व्यर्थ कष्ट उठाते हो, घर लौट जाओ'? उसकी बातों पर ध्यान न देकर यादवप्रकाश एक पहर तक मन्त्रोच्चारण करते रहे; परन्तु इससे कुछ फल नहीं हुआ। तब भूत ने कहा क्यों कष्ट उठाते हो। तुम हमसे भी अधम हो, अत: तुम हमको यहाँ से हटा नहीं सकते। यदि तुम यह चाहते हो कि मैं इस कोमलाङ्गी राजकुमारी को छोड़कर हट जाऊँ तो तुम्हारे शिष्यों में जो सबसे कम अवस्था का आजानुबाहु तथा महान प्रतिभाशाली श्रीमान् रामानुज हैं, उन्हें यहाँ बुलाओ। मेघाच्छन्न अमावस्या की रात्रि का घोर अन्धकार जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार उस महानुभाव के दर्शन से मैं हट जाऊँगा।

यादवप्रकाश ने उसी समय श्रीरामानुज को वहाँ बुलवाया। भूत को राजकुमारी के शरीर से हट जाने के लिए उनके द्वारा कहे जाने पर उस भूत ने कहा आप कृपा करके मेरे सिर पर अपना चरण रखिये, मैं चला जाऊँगा। आप इस दास की अभिलाषा को पूर्ण करें। गुरु की आज्ञा से श्रीरामानुज ने राजकुमारी के सिर पर पैर रखा और कहा कि राजकुमारी को छोड़ दो और तुमने राजकुमारी को छोड़ दिया है, इसका भी प्रमाण देते जाओ। भूत ने कहा यह मैं छोड़ता हूँ, इसके प्रमाण में सामने

पीपल के वृक्ष की शाखा को मैं तोड़ता हूँ। देखते-देखते पीपल की एक शाखा टूट गई और राजकुमारी निद्रा से उठी हुई के समान चारों ओर देखने लगी।

इस अद्भुत कार्य से श्रीरामानुजाचार्य जी का सर्वत्र सुयश फैल गया। इस घटना के पश्चात् यादवप्रकाश अध्यापन कार्य करने लगे। एक दिन ***'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'*** (छान्दो०) और ***'नेह नानास्ति किञ्चन'*** (कठो०) इन दोनों मन्त्रांशों की व्याख्या के समय यादवप्रकाश ने अति सुन्दर रूप से आत्मा और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित की।

उनकी व्याख्या सुनकर श्रीरामानुज के अतिरिक्त और सभी शिष्य प्रसन्न हुए। पाठ समाप्त होने पर श्रीरामानुज ने दोनों मन्त्रांशों के विषय में अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकाशित की। ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' इसका अर्थ निखिल जगत् ब्रह्मस्वरूप है। यदि ऐसा न होता तो उसका ''तज्जलान:'' विशेषण नहीं होता। यह जगत् ब्रह्म से उत्पन्न है, ब्रह्म द्वारा जीवित है और अन्त में ब्रह्म में ही लीन हो जाता है इसी कारण इसे ब्रह्ममय कहा जाता है। मछली जल से उत्पन्न होती है, जल के ही द्वारा जीवित रहती है और जल में ही लय होती है, परन्तु वह कभी जल नहीं हो सकती। इसी प्रकार जगत् कभी ब्रह्म नहीं हो सकता। ''नेहनानास्ति किञ्चन'' इसका अर्थ एक से अतिरिक्त अन्य वस्तु नहीं है ऐसा नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह है कि संसार में वस्तु समूह पृथक्-पृथक् नहीं हैं। जिस प्रकार एक सूत में कई मोती मिलकर एक माला हो जाती है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न वस्तुएँ ब्रह्मरूपी सूत्र में आबद्ध होकर जगत् के रूप में परिणत होती है। अनेक केवल एक में मिलकर एकाकार धारण किये हुए हैं। इससे अनेकत्व में कोई हानि नहीं होती।

इस व्याख्या को सुनकर यादवप्रकाश बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीरामानुज से कहा यदि हमारी व्याख्या तुम्हें उचित नहीं जान पड़ती है, तो तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नहीं और वे गुरु को प्रणाम करके अपने घर चले गये।

श्रीमहापूर्ण स्वामी से दीक्षा ग्रहण

वैश्य कुलोत्पन्न काञ्चीपूर्ण नाम के एक महात्मा थे। उन्हें बाल काल से ही बरदराज भगवान् के चरणों में विशेष प्रेम था वे अभिमान रहित होकर अनवरत वरदराज की प्रसन्नता के लिए कर्म करते थे। गरमी के दिनों में शीतल जल सिक्त पंखा हाथ में लेकर वरदराज भगवान् के पास डुलाते रहते थे। सांसारिक प्रपञ्चों से मुक्त होकर भगवान् की सेवा में संलग्न रहने वाले निर्मल हृदय श्रीकाञ्चीपूर्ण से भगवान् बात करते थे।

श्रीरामानुजाचार्य जी सैद्धान्तिक विरोध के कारण यादव प्रकाश से अलग हो गये थे। वे घर पर ही शास्त्र का चिन्तन करते रहते थे। एक दिन महात्मा श्रीकाञ्चीपूर्ण उनके घर के पास से जा रहे थे। श्रीरामानुजाचार्य ने उनका दर्शनकर अपने को भाग्यशाली माना। श्रीकाञ्चीपूर्ण से श्रीरामानुजाचार्य ने शिष्य बनाने के लिए आग्रह किया; परन्तु श्री काञ्चीपूर्ण ने कहा कि मैं उसके योग्य नहीं हूँ। श्री रामानुजाचार्य में विशेष भक्ति का लक्षण प्रकट हो रहा था। अत: श्रीकाञ्चीपूर्ण स्वामी से उन्होंने कहा कि भगवान् आपसे बात करते हैं। अत एव आप श्रीवरदराज भगवान् से पूछकर बतलाये कि मैं किनसे पञ्च संस्कार ग्रहण करूँ। श्रीकाञ्चीपूर्ण ने भगवान् से पूछकर कहा कि उनका आदेश है कि श्रीमहापूर्ण स्वामी से शिष्य बनें।

महापूर्णाचार्य महात्मानं समाश्रय गुणाश्रयम्।।

श्रीमहापूर्ण स्वामी श्रीरङ्गम् रहते थे।

दीक्षा एवं संन्यास

श्रीरङ्गम् के भक्तों ने श्रीमहापूर्ण स्वामी से काञ्ची जाने के लिए प्रार्थना की। उनका उद्देश्य था कि श्रीरामानुजजी को दीक्षित कर श्रीयामुनाचार्य के सिद्धान्त के प्रचारार्थ उन्हें श्रीरङ्गम् ले आवें। श्रीमहापूर्ण स्वामी काञ्ची के लिए प्रस्थान कर दिए। मार्ग में

मदुपरान्त में एक विष्णु भगवान् के मन्दिर के पास तालाब में स्नानार्थ ठहर गये। इधर काञ्ची से श्रीरामानुजाचार्य उनसे दीक्षा के लिए जा रहे थे। वे भी वहाँ पहुँच गये। श्रीमहापूर्ण स्वामी का दर्शन कर श्रीरामानुजजी कृतकृत्य हो गये। स्नान के बाद श्रीरामानुजजी ने महापूर्ण जी से वैष्णवी दीक्षा के लिए प्रार्थना की । श्रीमहापूर्ण जी ने कहा कि काञ्ची चलकर श्रीवरदराज भगवान् की सन्निधि में दीक्षा कार्य सम्पन्न होगा। श्रीरामनुजजी ने उनसे कहा कि माहत्मन्! हमको एक मुहूर्त्त का भी बिलम्ब असह्य मालूम हो रहा है।

मृत्यु का कुछ ठिकाना नहीं है—

स्वपन्तं वापि भुंजानं गच्छन्तमपि वर्त्मनि ।
युवानमपि बालं वा स्ववंशे कुरुते विधिः ।।

सोये हुए, भोजन करते हुए, मार्ग में जाते हुए, युवा हो अथवा बालक हो मृत्यु सब अवस्था में अपने वश में कर लेती है। अत: आप इसी समय अपने चरणों में आश्रय दें। अत: श्रीमहापूर्ण स्वामी जहाँ ठहरे हुए थे, वहीं विष्णु मन्दिर में श्रीरामानुज जी को वैष्णवी दीक्षा दे दी। तदनन्तर काञ्चीवरम् आ गये।

संन्यास धारण

श्रीरामानुजाचार्य के हृदय में सतत यह भाव बना रहता था कि मैं किसी प्रकार परिवार से अलग हो श्रीविष्णु भगवान् से विमुख जीवों के उद्धारार्थ कर्म करूँ। भगवत्कृपा से कतिपय कारण वश श्रीरामानुजाचार्य जी २० वर्ष की अवस्था में अपनी पत्नी को श्वसुरगृह भेजकर संन्यास धारण कर लिए। श्रीवैष्णव परम्परा के संन्यासी शिखा, यज्ञोपवीत और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण कर हाथ में त्रिदण्ड रखते हैं। मन, वचन और शरीर को अपने वश में रखने के उद्देश्य से त्रिदण्ड धारण किया जाता है अर्थात् मन से किसी प्रकार के गलत न सोंचे, वचन से किसी को कष्ट न दे और शरीर से किसी को पीड़ा न पहुँचाये

श्रीरामानुजाचार्य के शिक्षागुरु यादवप्रकाश थे। वे सैद्धान्तिक मतभेद के कारण श्रीरामानुजाचार्य जी को अपने पास से अलग कर दिये थे। किन्तु भगवत्कृपा से वे ही यादवप्रकाश रामानुजाचार्य के अलौकिक प्रभाव को जानकर उनसे श्रीवैष्णवी दीक्षा ग्रहण कर संन्यासी हो गये। उनका नाम गोविन्द दास पड़ा।

श्री आचार्यजी के पाँच गुरु

१. श्रीमहापूर्ण स्वामी ने श्रीरामानुजाचार्य को पञ्च संस्कार करके सिद्धित्रय, गीतार्थ-संग्रह और आगम प्रामाण्यम् आदि ग्रन्थों का बोध कराया।
२. श्रीगोष्ठीपूर्ण स्वामी ने श्रीआचार्यजी को १८ बार मन्त्रार्थ रहस्य का उपदेश किया है।
३. श्रीमालाधर स्वामी से श्रीआचार्य जी ने श्रीशठकोपसूरि निर्मित सामवेद के सारभूत सहस्त्रगीति का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किया था।
४. श्रीवररङ्गपूर्ण स्वामी ने श्रीआचार्यजी को वेदान्त का सारगर्भित रहस्य का उपदेश किया।
५. श्रीशैलपूर्ण स्वामी ने महर्षि वाल्मीकि निर्मित रामायण का तात्त्विक ज्ञान श्रीआचार्य जी को दिया।

श्री आचार्यजी का दार्शनिक सिद्धान्त

श्रीस्वामी रामानुजाचार्य के प्रादुर्भाव से पूर्व, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता का गलत अर्थ करके आध्यात्मिक धरातल पर भ्रम फैलाया गया कि जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मस्वरूप है, ब्रह्म निर्गुण है और ज्ञान से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न स्वामी रामानुजाचार्य जी ने उन्हीं प्रस्थानत्रयी (गीता उपनिषद और ब्रह्मसूत्र) का भाष्य लिखकर स्पष्ट कर दिया कि तीन तत्त्व हैं चित्त् अचित्त् और ईश्वर। चित्त् का अर्थ है जीवात्मा जो देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि

इन पाँचों से विलक्षण है। वह आनन्द स्वरूप, नित्य अणु अव्यक्त, अचिन्त्य, निरवयव, निर्विकार, ज्ञानाश्रय और सर्वेश्वर का शरीर होने से उनसे नियाम्य, धार्य और उसका शेष है।

अचित् कहते हैं ज्ञानशून्य को उसको जड़ प्रकृति, माया और अविद्या शब्द से वर्णन किया गया है। ज्ञानशून्य होने से जड़, विकार उत्पन्न करने के कारण प्रकृति, देह में आत्मबुद्धि, परतन्त्र आत्मा में स्वतन्त्रबुद्धि, अनीश्वर में ईश्वर बुद्धि आदि विपरीत बुद्धि उत्पन्न करने के कारण अविद्या तथा सृष्टि के विचित्र कार्यों को करने से माया कहते है। माया मिथ्या नहीं है, यह परिणामी है। स्थूल जगत् का प्रतिक्षण परिवर्त्तन होता रहता है। सूक्ष्म पर जाकर विराम कर जाता है। प्रलय के बाद उसी सूक्ष्म से स्थूल की सृष्टि होती है। जगत् के साथ जीव का सम्बन्ध मिथ्या है। वस्तुत: जगत् मिथ्या नहीं है।

जड़ चेतन का समुदाय जगत् है, जगत् का सृजन पालन और संहार करने वाले को ब्रह्म कहते हैं। वही सर्वेश्वर विष्णु, राम, कृष्ण आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। जड़ चेतनमय जगत् ब्रह्म का शरीर है और ब्रह्म सबकी आत्मा है। वह अनन्तकल्याण गुणों एवं विभूतियों से युक्त है, इसलिए सगुण कहा जाता है। प्राकृत सत्व, रज और तम ये तीनों गुण ब्रह्म में नहीं हैं अत: वह निर्गुण है। सूक्ष्म जड़चेतन से विशिष्ट ब्रह्म कार्य है। अत: विशिष्टाद्वैत है।

कर्म एवं ज्ञान अङ्ग है और भक्ति अङ्गी है। भक्ति के बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती है। ब्रह्म भक्ति से ही प्रसन्न होकर परमपद वैकुण्ठ देते हैं।

श्रीरामानुजाचार्य जी संन्यासियों में प्रधान थे इसलिए वे यतिराज, यतीन्द्र आदि विशेषण से विभूषित किए गए हैं। यतिराज श्रीरामानुजा-चार्यजी महाराज ने ब्रह्म, जीव और माया के सम्बन्ध में गलत निर्णय देने वाले मताबलम्बी पण्डितों को भारत में सर्वत्र घूम-घूमकर शास्त्रार्थ में परास्त किया।

अत एव वेदान्ताचार्य ने तत्त्वमुक्ताकलाप में कहा है कि—

गाथा तथागतानां गलति
गमनिका कापिलो क्वापि लीना ।
क्षीणा काणादवाणी
द्रुहिणहरगिरस्सौरभं नारभन्ते ।।
क्षामा कौमारिलोक्तिर्जगति
गुरुमतं गौरवाद् दूरवान्तं ।
का शङ्का शङ्करादेर्भजति
यतिपतौ भद्रवेदीं त्रिवेदीम् ।।

उन्होंने सभी जगह भगवान् विष्णु के मन्दिर एवं रामानुज मठ की स्थापना करायी है। उत्तर भारत में द्वारका, मथुरा, अयोध्या, मुक्तिनारायण, बदरिका-श्रम, नैमिषारण्य, पुष्कर, वृन्दावन आदि दिव्य स्थानों का दर्शन करते हुए शारदापीठ कश्मीर पहुँचे, वहाँ आपके वैदुष्य से प्रभावित होकर भगवती शारदा ने आपको श्रीभाष्यकार की पदवी से विभूषित किया।

यतिराज श्रीरामानुजाचार्य ने निम्नलिखित सात पुस्तकों का प्रणयन किया।

(१) श्रीभाष्य (२) गीताभाष्य (३) वेदार्थ संग्रह (४) वेदान्तदीप (५) वेदान्तसार (६) गद्यत्रय और (७) नित्याराधन।

श्रीरामानुज स्वामी के समय में भक्तों ने भूतपुरी में श्रीयतिराज स्वामी की मूर्ति तैयार करायी। उसमें श्रीस्वामीजी ने अपनी शक्ति का आधान किया। तदनन्तर मन्दिर तैयार कर मूर्ति स्थापित हुई।

श्रीयतिराज स्वामी के अनेक प्रतिभाशाली शिष्यों ने इस भूतल पर विशिष्टाद्वैत दर्शन का आलोक देते हुए श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार किया। तदनन्तर श्रीयतिराजस्वामी श्रीरङ्गभगवान् के दिव्य चरणों की सन्निधि में रहने लगे। उनकी अवस्था देखकर वहाँ के भक्तों ने आग्रह किया कि आपका दर्शन सदा मिलता रहे एतदर्थ अपनी प्रतिकृति बनवाने का आदेश दिया जाय।

स्वामी जी ने आदेश दिया। भक्तों ने उनकी मूर्ति बनवायी। उसमें श्रीस्वामीजी ब्रह्मरन्ध्र को सूंघकर अपनी शक्ति दी। वह मूर्ति श्रीरङ्गम् में स्थापित है। श्रीयतिराज स्वामी १२० वर्ष की अवस्था में खृष्टाब्द १११६ माघशुक्ल दशमी शनिवार के मध्याह्न में अपने गुरु श्री महापूर्ण स्वामी की चरणपादुकाओं का दर्शन करते हुए परमपद के लिए प्रस्थान किए।

त्रिदण्डहस्तं सितयज्ञसूत्रं
काषायवस्त्रं लसदूर्ध्वपुण्ड्रम् ।
रथाङ्गशङ्खाङ्कित बाहुमूलं
रामानुजार्यं शरणं प्रपद्ये ।।

श्रीभाष्यकार द्वारा अवश्य आचरणीय उपदेश—

(१) पूर्वाचार्यों के उपेदशमय वाक्यों पर विश्वास करके आचरण करना चाहिए।

(२) भगवान् के मन्दिर, गुरुगृह और श्रीवैष्णव निवासी की ओर पैर पसारकर कभी न सोये।

(३) सोने के पूर्व और जगाने के पश्चात् गुरुपरम्परा का पाठ करे।

(४) किसी भी श्रीवैष्णव के आगमन की सूचना मिलने पर उसकी आगवानी करने को जाना चाहिए।

(५) भगवान् विष्णु के दिव्यमन्दिर, विमान, गोपुर आदि को देखते ही सिर झुकाकर उनको प्रणाम करे।

(६) विष्णु पादोदक अथवा किसी भक्तका श्रीपादतीर्थ अथवा शुद्ध पेय जल को अवैष्णव के सामने ग्रहण न करे।

(७) तत्त्वत्रय–ब्रह्म, जीव और प्रकृति का रूप रहस्यत्रय मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र और चरममन्त्र का जिसे भली-भाँति ज्ञान नहीं है ऐसे श्रीवैष्णव का श्रीपादतीर्थ कभी न लें।

(८) भगवत्सन्निधि में भागवतों के दिये हुए तीर्थ प्रसाद को ''दास आज उपवास व्रत में है'' कहकर कभी न त्यागे उसे बड़ी श्रद्धा भक्ति से ले।

(९) सर्वपापहारी भगवत्प्रसाद को कभी उच्छिष्ट न समझे।

(१०) श्रीवैष्णवों के सामने अपनी प्रशंसा न करे।

(११) श्रीवैष्णवों की सन्निधि में किसी का तिरस्कार भी न करे।

(१२) २४ घंटे में कम से कम एक घंटा तो नित्य अवश्य ही आचार्य गुणगान करे।

(१३) जो पुरुष रात-दिन परनिन्दा किया करता हो उससे कभी बातचीत न करे।

●

समय शुद्धि

श्रावण कृष्ण पक्ष त्रयोदशी बुधवार १२-०८-२०१५ को गुरु पश्चिम में अस्त होंगे।
भाद्रपद कृष्ण पक्ष अष्टमी रविवार ०६-०९-२०१५ को पूर्व में गुरु उदय लेंगे।

शुक्रास्त

श्रावण कृष्ण पक्ष अष्टमी शुक्रवार ०७-०८-२०१५ को शुक्र पश्चिम में अस्त होंगे।
श्रावण शुक्ल पक्ष पञ्चमी बुधवार १९-०८-२०१५ को शुक्र पूर्व में उदय लेंगे।

सिंहस्थ गुरु

अधिक आषाढ़ पूर्णिमा २ जून से अगहन कृष्ण एकादशी सोमवार ७ दिसम्बर तक सिंह राशि पर वृहस्पति (गुरु) रहेंगे। तदनन्तर कन्या राशि पर गुरु को चले जाने पर अगहन शुक्ल पक्ष से विवाहादि माङ्गलिक कृत्य करने में दोष नहीं रहेगा। ●

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

श्रीमद्भागवत सप्ताह ज्ञानयज्ञ के रजत जयन्ती स्वरूप श्रीलक्ष्मी-नारायण-महायज्ञ एवं परमाचार्य जी महाराज के १५०वीं जयन्ती लखीवाग (मानपुर) श्रीविष्णुधाम गया का आँखों देखा हाल

गया का नाम गयासुर के नाम पर पड़ा है। गयासुर अत्यन्त बलवान् दानव था। उसको वश में करने के लिए सभी देवताओं ने अपनी शक्ति लगा दी, फिर भी वह किसी के वश में नहीं आया। तदनन्तर श्रीभगवान् ने स्वयं आकर उसे अपने गदा से दबाकर नियन्त्रित किया, फलतः भगवान् का नाम गदाधर पड़ा। आज भी लोग गया-गदाधर की गाथा गाते हैं। गयासुर को नियन्त्रित करने पर श्रीभगवान् ने उसे वरदान दिया कि जो भी व्यक्ति तुम्हारे इस क्षेत्र में अपने पूर्वजों को पिण्ड देगा, उसे मैं मुक्ति प्रदान करुँगा। परमाचार्य जी महाराज सदैव अपने भक्तों से कहा करते थे— मातु-पिता-गुरु तारन को, जो गया न गया सो कहीं न गया। लखीबाग (मानपुर) श्रीविष्णु धाम गया में लखीबाग के भक्तों द्वारा विगत २५ वर्षों से स्वामी जी महाराज के तत्त्वाधान में ज्ञानयज्ञ का कार्यक्रम सम्पन्न कराया जा रहा है। विगत २५ वर्षों से नियत स्थान व समय पर स्वामी जी महाराज द्वारा ज्ञानयज्ञ सम्पन्न कराना लखीबाग के श्रीवैष्णवों की विशेष भक्ति का द्योतक है। वर्तमान समय में नाच-गाना, सिनेमा आदि का अखण्ड कार्यक्रम आयोजित होते हुए देखा-सुना जा सकता है किन्तु श्रीमद्भागवत ज्ञानयज्ञ का अखण्ड २५ वर्षों से होना स्वयं में आश्चर्य का विषय है। विगत २०१४ में २४वाँ वर्ष था। २४वें वर्ष के पूर्णाहुति के अवसर पर भक्तों ने २५वें वर्ष को रजत जयन्ती वर्ष के रूप में श्रीलक्ष्मी-नारायण-महायज्ञ एवं परमाचार्य जी महाराज की १५०वीं जयन्ती वर्ष हर्षोल्लास के साथ मनाने का सङ्कल्प ले लिया। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि भक्तों के सङ्कल्प में दुर्लभ सुन्दर योग बन गया। एक तरफ ज्ञानयज्ञ की रजत जयन्ती तो दूसरी तरफ परमाचार्य परमपदी स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की १५०वीं जयन्ती।

भक्तों के लिए गए निर्णय पर पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और मुख्य यज्ञ हेतु समय निश्चित हुआ २६-०२-२०१५ से ०२-०३-२०१५ का। इस सङ्कल्प का सन्देश कर्णपरम्परया सम्पूर्ण वैष्णव समाज में विद्युतगति से प्रसारित हो गया। ३० नवम्बर को स्वामी जी महाराज ने यज्ञस्थल का चयन कर दिया और अपनी परम्परानुसार हनुमत् ध्वजारोपन का मुहूर्त्त ०६-१२-२०१५ को निश्चय किया। यज्ञ के साथ होने वाले कार्यक्रम—०५-०२-२०१५ से १३-०२-२०१५ तक वाल्मीकि रामायण, १०-०२-२०१५ से १८-०२-२०१५ तक हरिवंश पुराण, १९-०२-२०१५ से २५-०२-२०१५ तक श्रीमद्भागवत् कथा, २०.०२.२०१५ से २४.०२.२०१५ तक पञ्चदिवसीय अखण्ड हरिनाम सङ्कीर्तन, २५-०२-२०१५ को जलाहरण एवं नगर शोभायात्रा, २६-०२-२०१५ से ०२-०३-२०१५ तक मुख्य यज्ञ एवं परमाचार्य (श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज) की जयन्ती।

निर्माण कार्य—मण्डपादि निर्माण उत्तर बिहार (मुजफ्फरपुर) से विशेषज्ञ को आहुत कर कराया गया। इस वर्ष मण्डप २४ × २४ हाथ लम्बाई-चौड़ाई तथा ऊँचाई ४२ फुट पाँच मञ्जिला बना था। मण्डप में निर्मित गाय-बछड़ा, मोर, कलशादि की मूर्तियाँ अनुपम छटा बिखेर रहे थे। नौ कुण्डीय मण्डप में यथा स्थान सभी वेदियों के मध्य यज्ञ भगवान् की प्रधान वेदी अत्यन्त मनोहारी थी। अन्यान्य अनुष्ठानों के लिए मण्डप के चारों कोणों पर पृथक्-पृथक् मण्डप निर्मित हुए थे।

प्रवचन पण्डाल—नित्य प्रवचन हेतु ६० × ९० का पण्डाल बना था, जिसमें स्वामी जी महाराज का नित्य प्रवचन होता था, मुख्य पण्डाल १५० × २०० फुट का था; परन्तु भक्तों की भीड़ ने पण्डाल को छोटा बना दिया।

आवास—आगन्तुक भक्तों के लिए पटकुटी के अतिरिक्त एक विशाल सरकारी भवन की सेवा

ली गयी। यह भवन हरिजन छात्रावास के निमित्त निर्मित हुआ था, जो रिक्त था। इस भवन के उपलब्ध होने से भण्डार के साथ-साथ भोज व्यवस्था, आवास व्यवस्था में अत्यधिक सहयोग मिला।

अनुष्ठान—स्वामी जी महाराज द्वारा आयोजित प्रत्येक यज्ञ में वाल्मीकि रामायणादि के श्रोता भक्त तो रहते ही हैं, विशेष रूप से नि:सन्तान दम्पती आशा लगाये रहते हैं। चिकित्सकीय सहायता से निराश दम्पतियों के लिए स्वामी द्वारा अनुष्ठित हरिवंश कथा आशा का केन्द्र रहता है। विगत अनुष्ठानों का प्रतिशत फल भी अत्यन्त उत्साहजनक रहा है। अस्तु इस यज्ञ में भी २० दम्पतियों ने हरिवंश कथा का श्रवण निष्ठापूर्वक किया। भगवत्कृपा एवं स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद से उन सभी की कामना सिद्ध हो।

जलाहरण एवं नगर शोभायात्रा—यज्ञार्थ अन्त:सलिला से सहस्त्र घटों में जलाहरण करने की योजना बनी। इसके लिए प्रात:काल से अभूतपूर्व उत्साह देखने को मिला। महिलायें लाल अथवा पीत रंग की नूतन साड़ी से सुसज्जित तथा पुरुष पिताम्बर धारी होकर पंक्तिबद्ध दो दर्जन वैण्ड बाजा, १७ घोड़े, ऊँट, रथ आदि के साथ नगर भ्रमण करते हुए जला-हरण करने हेतु सीता कुण्ड पहुँच गए। वहाँ वरुण देवता की विधिवत् पूजनोपरान्त फल्गु नदी से सभी भक्तों ने कलश में जल ग्रहण किए। रथ पर छत्र, चामर से विभूषित महामण्डलेश्वर श्री रामभूषण दास (वृन्दावन वाले) विशेष आकर्षण के केन्द्र थे।

मुख्य यज्ञ—२६-२-२०१५ से २-३-२०१५ तक मुख्य यज्ञ था, जिसके लिए अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज एवं छोटे स्वामी अनन्तश्री विभूषित स्वामी हरेरामाचार्य जी महाराज सहित ३७ विद्वान् पण्डितों को चार जोड़ी यजमानों ने वरण किया और शास्त्रीय रीति से हवन, पाठ, जप आदि का कार्य विधिवत् सम्पन्न हुआ। हव्य सामग्री में ३२ मन तिल, १६ मन चावल, ८ मन जौ, ४ मन गुड़, ४ मन घी, १६ मन देवदार सहित अन्य सुगन्धित सामग्रियाँ थी। हवन से पूरा यज्ञ क्षेत्र सुगन्धित होता रहता था।

यज्ञ में विभिन्न प्रान्तों से यथा–अयोध्या, वृन्दावन, तिरुपति, पुरी, बाढ़ आदि स्थानों से स्वनामधन्य सन्त-महान्त पधारे थे, जिनकी समुचित सेवा यज्ञ समिति ने की थी। आगत सन्तों को कोई असुविधा न हो इसका विशेष ध्यान स्वयंसेवकों द्वारा रखा जाता था। प्रवचन कार्य में श्रीस्वमी जी महाराज, छोटे स्वामी जी महाराज के अतिरिक्त श्रीसुदर्शन दास, श्री मिथिलेशाचार्य, श्री रामभूषण दास, श्री कृष्णप्रपन्नाचार्य एवं डॉ० रामदेव शर्मा जी का विशेष योगदन रहा। इन लोगों ने कथा के सभी आयामों से भक्तों को संतृप्त किया।

यज्ञोपवीत का कार्यक्रम—स्वामी जी महाराज की दृष्टि समाज पर सदैव रहती है। उनका मानना है कि संस्कारयुक्त व्यक्ति ही आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर हो सकता है। यज्ञोपवीत संस्कार एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है, जो आज अज्ञान के कारण उपेक्षा का शिकार हो गया है। यज्ञकाल में शुभ मुहूर्त्त प्राप्त होने के कारण स्वामी जी महाराज ने यज्ञोपवीत का कार्यक्रम भी सूचीबद्ध कर लिया था, जिसके फलस्वरूप २४ बटुकों को यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत किया गया।

सांस्कृतिक कार्यक्रम—वृन्दावन के २४ सदस्यीय रासलीला की मण्डली द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा चरित विविध लीलाओं का सजीव प्रस्तुतीकरण एवं भरत सिंह भारती द्वारा मगही लोकगीत का प्रस्तुतीकरण भक्तों को विशेष आनन्द प्रदान किया। यज्ञसमिति द्वारा जल प्रबन्धन, नित्य का भोजन प्रबन्धन, आवास आदि की व्यवस्था उत्तम प्रकार से की गयी थी। परमाचार्य जी की जयन्ती भी विधिवत् मनायी गयी और यज्ञान्त में २५० मन लड्डू भण्डारा हेतु तैयार किया गया था, जिसका विधिवत् वितरण हुआ। आगत सन्त-महान्त, विद्वान्, अतिथि सभी का यथोचित विदाई की गयी। निष्कर्ष स्वरूप यह कहना चाहिए कि यज्ञ सम्पादन का लक्ष्य पूज्यपाद स्वामी जी महाराज के आशीर्वाद एवं यज्ञ भगवान की कृपा से पूर्णत: पूर्ण हुआ।